CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाथेय

पू.आचार्य श्री.किशोरजी व्यास के
बाल संस्कार विषयक प्रवचनों का शब्दांकन

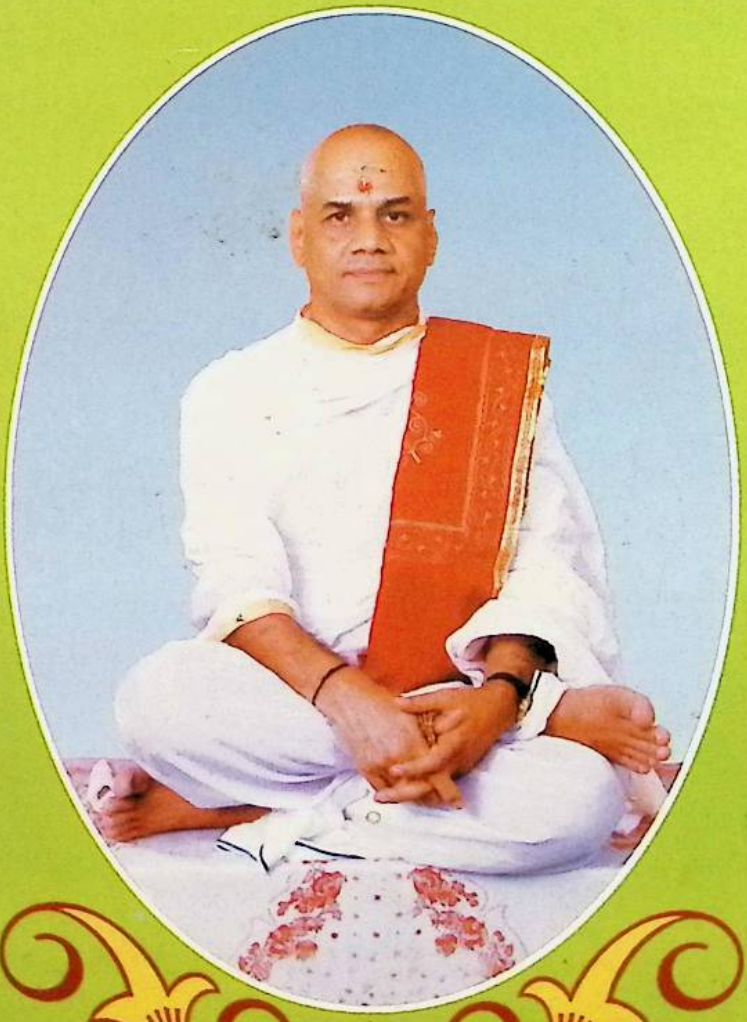

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाथेय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुभसंदेश

आचार्य श्री किशोरजी व्यास के बाल संस्कार विषयक प्रवचनों का संग्रह 'पाथेय' नाम से प्रकाशित किया जा रहा है यह बडी प्रसन्नता की बात है।

बालक का मन बडा सरल और तरल होता है। इस मन में संस्कार ग्रहण करने की शक्ति होती है। बचपन में किये गये संस्कार बालकों को वर्तमान तथा भावी जीवन में बहुत काम आते हैं।

बालमन में बडी उर्जा होती है, जिससे वह अनेक विषयों को आत्मसात् करके समाज सेवा के कार्य में उनका उपयोग कर सकता हैं।

बालकों की क्षमताओं को संस्कार शिविर के द्वारा प्रकट किया जा सकता हैं। बालक निर्दोष, निर्मल और निष्कपट होते हैं इसीलिए वे परमात्माके अधिक निकट भी होते हैं। भगवान शंकराचार्यजी का बाल्य जीवन से ही स्वाध्याय, प्रवचन, परिव्रजन का कार्य प्रारंभ हुआ था, जिससे वे तत्कालीन अवैदिक विचारधारा में डूबे हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को नवीन दिशा दे सके।

भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण भी गुरूकुलों में संस्कारित होने के लिये गये थे। भारत में भक्ति सम्पन्न बालकों की एक दीर्घ परम्परा है। इन बालकों के जीवन चरित्र से बालकों को नई दिशा और प्रेरणा मिल सकती है।

श्रद्धेय आचार्य किशोरजी व्यास ने बाल संस्कार शिविरों द्वारा चरित्र निर्माण का जो अभियान प्रारंभ किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा उनके विचारों का भली भाँति प्रचार हो सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है। पुस्तक का शब्दांकन करनेवाली सौ. निर्मला दामोदर मारू का परिश्रम सराहनीय है।

स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि
(संस्थापक-भारत माता मंदिर, हरिद्वार)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।

हृदयोद्‌गार

समझ में नहीं आता, कहाँ से प्रारम्भ करूँ.... अनेकानेक विचार उमड़-घुमड़ रहे हैं मन में.. उन्हें शब्द जाल में बाँधना मेरे जैसी अज्ञानी के लिए कहाँ सम्भव है। बस इतना ही जानती हूँ, ये सब सम्भव हो पाया तो केवल गुरु कृपा कटाक्ष से ही। "उर प्रेरक रघुवंश मणि" उन्होंने प्रेरणा दी और इस सत् संकल्प को पूरा करने का भार मेरे नटखट गोपाल ने ले लिया। और जब कान्हा कुछ ठान ले, तो उसे कोई रोक सकता है क्या?

निमित्त तो बना, कोटा का द्वितीय बाल-संस्कार शिविर। इस अवसर पर आयोजकों द्वारा एक स्मारिका के प्रकाशन का निर्णय हुआ और पू. आचार्यजी के लेख इसमें आने ही चाहिए, ऐसा सुन्दर विचार 'इनके' मन में आया। उसे पूरा करने के लिए पू. आचार्यजी द्वारा संगमनेर के महिला कार्यकर्ता स्वाध्याय शिविर में दिए गए उद्‌बोधनों की ध्वनिमुद्रिकाएँ लेखबद्ध करने का संकल्प प्रस्फुटित हुआ।

पू. आचार्यजी का आशीर्वाद एवं आज्ञा लेकर कार्य का श्रीगणेश तो किया, लेकिन अल्प समय में ही इस कार्य की सुरसा माता की देह के समान विशालता का अनुमान होने लगा। लेकिन बाल-गोपाल की सेवा के रूप में किए जाने वाले इस कार्य की महत्ता को 'मेरा-कान्हा' समझता था एवं सर्वदा सामने बैठा हुआ मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहता था। और दि. ७-११-९८ की रात्रि के १-३० बजे जब कार्य संपन्न हुआ, यों आभास हुआ कि साक्षात 'श्री कृष्ण' सम्मुख खड़े मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। पृष्ठों की संख्या देखकर विश्वास नहीं हो रहा था। निश्चित ही श्री गणेश भगवान् स्वयं इसे लिख रहे थे। मैं तो निमित्त मात्र थी।

अनेक अनुभूतियाँ इस दौरान हुई जिन्हें लिपिबद्ध करना मेरे लिए सम्भव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं। सुनने से भी लिखना कितना लाभदायक एवं प्रभावशाली होता है, इसका अनुभव मैंने किया।

मैं कृतज्ञ हूँ पू. गुरुचरणों की जिन्होंने मुझे इस सत्कार्य के लिए प्रेरित करने लायक समझा। कृतज्ञ हूँ माता-पिता स्वरूप मेरे सास-ससुर की जिन्होने इस भगवद् सेवा कार्य में आगे बढ़ने के लिए मुझे सदा प्रेरित किया एवं जिनके अथाह वात्सल्य एवं उत्साह वर्धन ने इस कार्य को सफल बनाया। मैं कृतज्ञ हूँ मेरे स्वर्गीय पिताश्री, पू. भाईजी एवं माताश्री जिनके द्वारा सिंचित संस्कारों ने इस सत्कार्य में मेरी रुचि जागृत की।

प्रिय संजू भैया एवं गोविन्द भैया की भी कृतज्ञ हूँ जिनके साथ दूरध्वनी पर बात करने मात्र से मुझमें नई चेतना का संचार होता था। लक्ष्मण समान मेरे देवर, प्रिय मधु भैया एवं लोकू भैया, मेरी प्यारी देवरानियाँ, सुजाता एवं रेणू भी अपना असीम स्नेह जताकर मुझे स्फूर्ति प्रदान करते रहे। और अन्त में मेरे सच्चे जीवन साथी, जिन्होंने हर पल, हर क्षण मेरा साथ दिया। प्यारी बेटियाँ कविता व रुचिता एवं नन्हे बेटे भुवन ने भी अपनी क्षमता से ज्यादा सहयोग देकर इस कार्य को मूर्त रूप देने में पूरा योगदान दिया।

पुणे स्थित प्रा. वासुदेवजी घाणेकर की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ - आयु के ७१ वर्ष में भी अतीव उत्साह से इस पुस्तिका के लेखन कार्य में उन्होंने सहयोग दिया।

पूरे प्रयास के उपरान्त भी अनेक त्रुटियाँ पुस्तिका में रह गयी हैं उनकी सर्वथा उत्तरदायी मैं हूँ।

अन्त में 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द...' यह भगवद् कार्य उन्हीं को सादर समर्पित है। 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु' - कान्हा का कार्य, उसीने कराया और उसे ही समर्पित ....

— निर्मला मारू

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंगलाचरण

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

नमामि सद्गुरुं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
पूर्णब्रह्मपरानन्दं ईशमाळंदिवल्लभम् ।।

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ।।

समर्थः शंकराचार्यः विवेकानन्द एव च ।
एतेषां स्मरणान्नित्यं आविर्भवति पौरुषम् ।।

रत्नाकराधौतपदां हिमालयकिरीटिनीम् ।
ब्रह्म-राजर्षिरत्नाढ्यां वन्दे भारतमातरम् ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्‌घाटन सत्र प्रवचन

—

महिला कार्यकर्ता स्वाध्याय शिविर के इस मंगल शुभारम्भ के अवसर पर मैं सर्वप्रथम माहेश्वरी महिला मण्डल संगमनेर का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ क्योंकि इस पवित्र कार्य के आयोजन का श्रेय उन्हीं को है। इस महिला मण्डल से मेरा बहुत पुराना और गहरा सम्बन्ध रहा है, इसलिए प्रारम्भ से ही इनकी क्षमताओं को मैं बहुत अच्छी प्रकार से जानता हूँ। जब किसी स्थान पर महिला मण्डल की स्थापना होती है तो लगता है उसकी दिशा संगमनेर के महिला मण्डल जैसी हो। यह अत्यन्त प्रगल्भ, सक्रिय, आधुनिक ही नहीं अतीव सांस्कृतिक महिला मण्डल भी है।

परसो ही मैं ढेड मास की अमेरिका की यात्रा करके वापस लौटा हूँ। मैंने इस यात्रा को एक अध्ययन यात्रा ही मान लिया था। उसी दृष्टि से वहाँ के समाज की स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन मैंने किया और साथ-साथ उस नूतन परिप्रेक्ष्य में मैंने अपने ही विचारों को जाँचने का प्रयास किया। अंत में मुझे यही अनुभव हुआ कि आज न केवल अमेरिका को लेकिन समस्त संसार को संस्कार कार्य की नितांत आवश्यकता है। संस्कारों को अगली पीढ़ी में संक्रमित करना और मनुष्य की क्रियाशक्ति की दिशा निश्चित करना आज की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

आज संसार के सभी लोग अमेरिका की ओर एक 'सम्पन्न राष्ट्र' की दृष्टि से देखते है, लेकिन अत्यन्त समृद्ध और विशाल वह राष्ट्र भी लगता है किसी ज्वालामुखी पर बैठा हो और इसका मूल कारण अच्छे संस्कारों की कमी ही है। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही, संस्कार कार्य की वहाँ प्रारम्भ नहीं हुई तो अमेरिका का भवितव्य १५-२० वर्ष से अधिक कदापि सम्भव नहीं है। आज जो बालक है वे कल का भविष्य है लेकिन उनकी अमेरिका में उपेक्षा हो रही है और ऐसा ही होता रहा तो पतन निश्चित है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारा यह संस्कार कार्य न केवल संगमनेर के लिए अपितु पूरे विश्व के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बात मैंने अमेरिका में बसे हुए भारतीय लोगों के बच्चे तथा अमेरिकी बच्चों की स्थिति को देखकर अनुभव की। अमेरिका में सभी संस्थाओं तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो भारतीय बसे हैं उनके बालक आगे आ रहे हैं और अन्य बालक पिछड़ रहे हैं। वहाँ के समाजशास्त्रीयों ने भी इस पर चिंतन किया तो वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमेरिका में आने के पश्चात् भी भारतीय परिवार में भावना है, प्रेम है। भारतीय पिता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा भी देते हैं और उन्हें पूरा संरक्षण भी देते हैं, इसलिए बच्चों का सम्पूर्ण विकास हो पाता है। लेकिन अमेरिकन माता-पिता १८ वर्षों के बाद अपने बालकों पर ध्यान नहीं देते है। परिणाम यह होता है कि इस आयु में वे असुरक्षितता का अनुभव करते हैं, उनका विकास कुंठित हो जाता है। अगर बच्चों में मांगलिक भावना जागृत करनी है, आत्मविश्वास निर्माण करना है, अनेक प्रतियोगिताओं में आगे बढ़ाना है तो उनको परिवार से प्रेम और संस्कार की आवश्यकता है। अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष क्लिंटन ने भी कहा है कि हमें सबसे पहले अपने परिवारों को जोड़ने का काम फिर से करना होगा।

संस्कार कार्य क्या है? - संस्कार कार्य परिवारों को स्थिर करने का कार्य है। हमारी भारतीय विचार-धारा में परिवार एक सबसे अच्छी, श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण इकाई है। अगर परिवार सुखी और समाधानी है तो समाज और राष्ट्र सुखी होगा, क्योंकि इन्हीं परिवारों को मिलाकर राष्ट्र बनता है। आज अमेरीका के सामने जो संकट है हो सकता है हमारे भारत देश में भी कुछ अंशों में इसका आरम्भ हुआ हो! यह रोग बढ़ने से पहले ही हमें इसकी औषधि आरम्भ करनी चाहिए। इसलिए आज 'संस्कार चिकित्सा' की ज़रूरत है।

अमेरिका में मैंने अनेक परिवारों में पहुँचकर उनसे बातचीत की वहाँ के माता-पिताओं ने मुझसे कहा - "महाराज, आप जरा हमारे बालकों से मिलिए, उनसे बातचीत कीजिए, क्योंकि वे हमारी बातें सुनते नहीं हैं।" इससे स्पष्ट है कि हर माता-पिता की यह सूक्ष्म आशा है कि हमारे बालक आगे बढ़े लेकिन अपनी दायित्त्व को वे भूल रहे हैं। आज संसार में लोगों की कमी नहीं है लेकिन कुछ अच्छा कार्य करने वालों की कमी है। अभी-अभी मैं महासभा के माननीय महामन्त्रीजी से बात कर रहा था। मैंने कहा कि आपके साथ कोई अच्छे कार्यकर्ता चाहिए। उन्होंने कहा - "मिलते नहीं है।" तो सोचो क्या हमारे भारत देश में लोगों की संख्या कम है? नहीं। संख्या तो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। लेकिन गुणवत्ता नहीं बढ़ती है। इस समय मुझे एक कहानी याद आती है - सागर में एक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जलयान जा रहा था। जहाज से पीने का पानी समाप्त हुआ तो कप्तान चिंता में पड़ गया कि अव इन लोगों को पिलाने के लिए पानी कहाँ से लाऊँ? कप्तान का बच्चा भी वहाँ ही था। उसने कहा - पिताजी ऐसी क्या बात है? इतना सारा पानी यहाँ है। कप्तान ने कहा, बात ठीक है बच्चे, पानी तो बहुत है लेकिन वह पीने के योग्य नहीं है। जल ही जल है चारों ओर, लेकिन पीने को एक बूँद नहीं। सचमुच इसी प्रकार लोगों का समुद्र हमारे चारों ओर फैला हुआ है। लेकिन कोई भी अच्छे कार्य के लिए कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं होते। क्या हो गया! पात्र मिलता नहीं और इस पात्र के निर्माण की विधि का नाम ही 'संस्कार कार्य' है। पात्र का अर्थ बरतन भी है। मिट्टी में पानी रखकर हम पी नहीं सकते, लेकिन मिट्टी का यदि कुल्हड़ बनाया जाए तो उसमें रखा हुआ जल हम पी सकते हैं। उसे ही पात्र कहते है। मिट्टी से बरतन तुरन्त नहीं बनता। उसे रोंदना, उसमें पानी डालना, उसे आकार देना, सेंकना आदि क्रियाओं के बाद कुल्हड़ बनता है। उसी प्रकार हमारे घर और समाज में जन्मे ये बच्चे मिट्टी के जैसे हैं और उनको अगर समाज और राष्ट्र के लिए पात्र बनाना है तो हमें भी एक विधि की आवश्यकता है, और उसी प्रक्रिया का नाम 'संस्कार प्रक्रिया' है।

संस्कार प्रक्रिया का काम परिवार और विद्यालयों में होना चाहिए, लेकिन आज वह नहीं हो रहा है। प्राचीन काल में यह काम होता था, लेकिन उसकी कहीं चर्चा नहीं थी। आज चर्चा है लेकिन काम नहीं हो रहा।

आज यह काम हर एक कर सकता है लेकिन आज के समाजसेवक सोचते हैं - यह काम मैं क्यों करूँ? रद्दी काग़ज़ पड़ा है - कोई और उठाएगा, मैं क्यों उठाऊँ? लेकिन एक संस्कार सम्पन्न व्यक्ति सोचेगा कि वहाँ पर रद्दी काग़ज़ पड़ा है उसे उठाना आवश्यक है। मैं भी तो समाज का एक अंग हूँ। मैं वह काग़ज़ क्यों न उठाऊँ? आज लोगों का सोचने का ढंग ही वदल गया है। लोग यही सोचते हैं कि जव पूरा सागर ही खारा हो गया तो उसमें एक वोरी चीनी डालने से वह थोड़े ही मीठा होगा? लेकिन हो सकता है आपकी एक वोरी को देखकर धीरे-धीरे सभी लोग इसी कार्य में लगेंगे और एक दिन पूरा सागर का पानी मीठा हो जाएगा।

सचमुच, विधाता ने हमें जो क्षमताएँ प्रदान की हैं उसे हमें काम में लगाना चाहिए। अगर किसी अच्छे कार्य की ज़िम्मेदारी आप उठाते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण आपको अधिक क्षमता देते हुए दृष्टिगत होंगे।

हम सभी यहाँ पर एक महान कार्य के निमित्त वनने के लिए आए हैं। सवसे पहले हमें स्वयं को पात्र अर्थात योग्य वनाना होगा। हम भगवान् की पूजा करते हैं तो पूजा के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपकरण भी बड़े साफ़ होते हैं। हम अब औरों के लिए संस्कार कार्य में जुट रहे हैं लेकिन हमें यह भी ध्यान देना होगा कि जब मैं उन संस्कारों को स्वयम् में धारण करूँ, अनेक गुण और विशेषताओं को धारण करके कमियों को निकाल दूँ तब ही औरों को यह शिक्षा देने के योग्य हूँ। अर्थात् तब ही मैं पात्र हूँ। तभी मेरी यह पूजा सफल होगी। यह कार्य केवल सामाजिक कार्य नहीं है। यह एक साधना है। तो इस शिविर में हमारा लक्ष्य यही हो कि मुझे पात्र बनना है। यहाँ पर कोई गुरु नहीं कोई शिष्य नहीं। इस दृष्टि से न तो संजू भैया आपके अध्यापक है और न मैं हूँ। हम भी शिविरार्थी हैं क्योंकि आपको बताते-बताते हम लोग भी योग्य बनते जाते हैं। बस, कोई चौथी सीढ़ी पर है, कोई तीसरी पर तो कोई दूसरी सीढ़ी पर। जो ऊपर की सीढ़ी पर है, उसका कर्तव्य होता है कि वह जो नीचे की सीढ़ी पर है, उसे हाथ देकर ऊपर की सीढ़ी तक लाए। भारतीय संस्कृति का यह प्रतिपादन है - "मुक्तश्च अन्यान् विमोचयेत्" जो कृतार्थ हो गया, जिसने सब कुछ प्राप्त कर लिया, वह अन्यों के लिए यह काम करें।

बालसंस्कार का काम जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है उसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व माताओं पर हैं। पिता के अत्यन्त संस्कारहीन होनेपर भी उत्तम संस्कारसम्पन्न बालकों का जन्म हम देखते हैं। जैसे हिरण्यकश्यपु के पुत्र प्रह्लाद्। लेकिन कहीं पर भी मुझे ऐसा उदाहरण दिखाई नहीं देता कि माता संस्कारहीन हों और बेटे में संस्कार आ जाएँ। हमारी संस्कृति में 'माता' यह शब्द ही अत्यन्त गौरवपूर्ण है। माता को ही पहला गुरु माना गया है। माताओं का यह कर्तव्य है कि वे केवल अपने बालकों की माता न बने। उनके सामने समाज में जो भी बालक आ ज़ाए, उस बालक की माता बनकर उसके लिए कुछ करने का प्रयास वह अवश्य करें। यह कार्य महिला ही कर सकती हैं, मातृशक्ति ही कर सकती है। वह भी बड़ी सफलता के साथ कर सकती है। अभी अभी किसी ने बतलाया था कि स्त्री, भक्ति और शक्ति की प्रतीक होती है। मैं एक शब्द उसमें और जोड़ना चाहता हूँ। शक्ति और भक्ति की प्रतीक तो स्त्री होती ही है साथ-साथ वह युक्ति की भी प्रतीक होती है। किसी के मन को कैसे वश में किया ज़ाए, कैसे बदल दिया ज़ाए, कभी प्यार से कभी फटकार से काम लेना यह कला पुरुषों में नहीं होती, लेकिन यह काम कैसे किया जाए यह महिलाएँ भली भाँती जानती हैं। उनका यह वात्सल्य परमात्मा की दी हुई अनमोल देन है। इस वात्सल्य का उपयोग यदि वह समस्त संसार के बालकों को संस्कार देने के लिए करेगी तो वह विश्वमाता कहलाएगी।

आप लोगों ने भी देखी होगी डायना की लोकप्रियता। उनकी अन्य बातों में मैं नहीं जाता, लेकिन जो लोकप्रियता उसने प्राप्त की उस लोकप्रियता में एक बड़ी सुन्दर बात

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थी कि उसने बालकों से असीम प्रेम किया। उसकी अन्य बातों को हमें यहाँ पर याद करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उसने समाज के बालकों को जो प्रेम दिया उस प्रेम का, समाज के दरिद्रों को जो प्रेम दिया, उस प्रेम का परिणाम यह था कि अन्त में उस जनमत के सामने वहाँ की सत्ता को, शासन को, सबको झुकना पड़ा। क्योंकि समाज आज प्रेम चाहता है, बच्चे आज प्रेम चाहते हैं।

आदरणीय ललिताजी ने बताया कि "मैं पिछले वर्ष झोपडपट्टी में गई, वहाँ के बालकों से मिली। वहाँ के बालकों के नेत्रों में जो आशा, जो प्रेम, जो झलक हमारे जाते ही जागृत होती है, आपको क्या बताँऊ केवल उस झलक को देखने में ही कितना समाधान है। जब हम देखते हैं उन बालकों के भीतर आत्मविश्वास जग गया है और उन्हें ऐसा लगा कि हमें कोई मिला जिसे हम चाहते थे, तो लगता है कि जिस काम के लिए मैं आगें बढ़ी हूँ उसमें स्वयं को भी तृप्ति प्राप्त होती है।" यह तृप्ति आपको न तो उत्तमोत्तम साड़ियाँ पहनकर प्राप्त होगी, न गहनों से प्राप्त होगी और न ही महलों में रहकर प्राप्त होगी। इन सब बातों से भी आनंद और सुख प्राप्त होता है, लेकिन इस सुख की एक सीमा है, और लोगों को दिया हुआ प्रेम जब अनंत गुना होकर वापस आता है तब उससे जो समाधान होता है, उस समाधान की तुलना संसार के किसी भी समाधान के साथ नहीं की जा सकती है।

आज जिनके पास थोड़ा समय है, थोड़ी क्षमता है, अपने घर गृहस्थी के कर्तव्य पूर्ण करने के पश्चात् थोड़ी सी स्वतन्त्रता भी है, ऐसी माताओं का कर्तव्य होता है कि वह केवल अपने दो बच्चों की माता न रहकर समाज के बालकों की भी माता बनें। उनको केवल "मेरे बच्चे... मेरे बच्चे.., म्हारा टाबरिया... म्हारा टाबरिया..." ही नहीं कहना है। यह तो बिल्ली भी कहती है। इसमें कौन सी बड़ी बात है? लेकिन जिनको प्रेम नहीं मिला वहाँ पर मेरी पूरी क्षमता के अनुसार अभाव को पूर्ण करने का प्रयास मुझे करना है। इसप्रकार का प्रण लेकर यदि आप समाज में, बहुत दूर नहीं अपने चारों ओर भी देखोगी, तो एक सुन्दर समाज का निर्माण आने वाले कुछ वर्षों में हम कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि अगर संस्कार कार्य ठीक ढंग से हुआ तो हमारा भारत देश संसार का सबसे श्रेष्ठ देश, आने वाले केवल १५ वर्षों में बनेगा। लेकिन उस महान् राष्ट्र के निर्माण हेतु हम लोगों को कदम से कदम मिलाकर चलना होगा, संगठित होना होगा। आपसी छोटे-बड़े मतभेदों को भुलाकर महान् कार्य की गंगा में स्वयं को प्रवाहित करना होगा।

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि हम इस कार्य में निमित्त बनें या न बनें यह काम तो होनेवाला ही है। हम उसमें निमित्त बनते है तो भी होनेवाला है, निमित्त नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी बनते है तो भी होनेवाला है। गीता में प्रभु ने यही कहा - "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्" जो होना है, अर्जुन वह तो होना ही है। कौरवों को मरना तो है ही। क्योंकि उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी है। लेकिन मैं तुम्हें यह श्रेय देना चाहता हूँ। मैं मेरे अर्जुन को संसार में बड़ा बनाना चाहता हूँ। मैं देखना चाहता हूँ कि इस युद्ध की विजय अर्जुन के कारण प्राप्त हुई, ऐसा संसार कहे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम उठो और युद्ध करो।

इस प्रकार हम लोगों को भगवान् की इस वाणी को याद करते हुए इस कार्य में अपने को पूरी तरह समर्पित करने के लिए प्रयास करने चाहिए। किस किस प्रकार के प्रयास करने से हम उस काम के लिए अधिकाधिक पात्र होते जाएँगे, इस का सुन्दर विवेचन यहाँ पर आप लोगों को तीन दिनों में मिलता रहेगा। मैं भी साथ में रहकर आपसे भी, संजू भैया से भी, कुछ सीखने का प्रयास करूँगा। आइए, हम सब लोग मिलकर के इस शिक्षा के कार्य में, संस्कारों की दीक्षा के कार्य में, आगे बढ़े और धीरे-धीरे अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने में जुट जाए। - "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" प्रभु ने यही कहा - "तुम अपना कर्म करो। अपना कार्य करते करते आगे बढ़ो। फल की इच्छा न करो।"

यह उथल पुथल उत्ताल लहर, पथ से न डिगा ने पाएगी।
पतवार चलाते जाएँगे, मंज़िल आएगी आएगी।।

मैं देख रहा हूँ कि यश हमसे दूर नहीं है, लोग भी अब इन सब बातों से ऊब गए हैं। टी. व्ही. के विरुद्ध भी हम लोगों को नहीं बोलना पड़ेगा। इससे लोग ऊब गए हैं। लेकिन लोगों को निश्चित रूप से क्या करना चाहिए। यह हमें बतलाना पड़ेगा। वह बतलाने के लिए किसी के पास कोई योजना नहीं, कार्यक्रम नहीं। सभी के अन्तःकरण में एक मंगल भावना है 'अच्छा होना चाहिए'। बुरे से बुरे को भी यही लगता है कि अच्छे से अच्छा होना चाहिए। लेकिन वह कैसे हो और उसके लिए मुझे कैसे योग्य बनाया जा सकता है इसकी प्रक्रिया किसी के पास नहीं है। इस अन्धकार को दूर करने के लिए एक छोटा सा दीपक संगमनेर में प्रज्वलित हुआ है। इस दीपक का प्रकाश अब चारों ओर फैलना चाहिए क्योंकि इसी में सभी का कल्याण है। इस दीपक के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए हम लोग यहाँ पर एकत्रित हैं। भगवान् महेश्वर के चरणों में बैठकर इस प्रकाश को अपने जीवन में प्राप्त करें तथा स्वयं का जीवन, पारिवारिक जीवन, और सामाजिक जीवन सफल बनाने में, दो कदम ही सही, आगे बढ़ें। इतनी ही प्रार्थना करता हुआ पुनःश्च आप का स्वागत और संयोजकों का अभिनन्दन करते हुए आज अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथम प्रवचन

देश के विभिन्न स्थानों से पधारी हुई मातृशक्ति के समक्ष आज मुझे कुछ चिन्तन दोहराने का अवसर प्राप्त हो रहा है। विशेष बात यह है कि यहाँ पर आयी हुई मातृशक्ति सामान्य नहीं है। अपने अन्तर्मन में कुछ विशेष उद्देश्य, अपने जीवन में कुछ विशेष कार्य करने का संकल्प लेकर यहाँ पर आप आयी हुई हैं। जो कार्य हम लोग करने जा रहें हैं वह कार्य अपने आप में एक अनोखा एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। जब कोई भी काम किया जाता है तो वह काम, मैं किसलिए कर रहा हूँ? इसका एक स्पष्ट दृष्टिकोण हमारे अन्तःकरण में विकसित होना आवश्यक होता है। केवल काम करना महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह कार्य करते हुए उस कार्य की महत्ता को जानकर, उस कार्य के उद्देश्य को अन्तःकरण में संजोकर, फिर उस कार्य को करना-इसका अधिक महत्त्व है।

उपनिषद् में एक बड़ा सुन्दर वाक्य आता है -

"यदेव विद्यया करोति, श्रद्धया उपनिषदा वा तदेव वीर्यवत्तरम् भवति।"

कोई भी कार्य जब जानकर किया जाता है, श्रद्धा से किया जाता है, अपने सद्गुरू के सान्निध्य में किया जाता है, तो उस कार्य की महत्ता, उस कार्य का मूल्य अपने आप बढ़ जाता है। काम वही है लेकिन वही काम उसे जान कर किया जाता है तो उससे प्राप्त होनेवाला फल अनन्त गुना हो जाता है। हमारे शास्त्रों में इसका वर्णन आता है।

कल ग्रहण का समय था, तो शास्त्रकारों ने कहा किसी मन्त्र का पुरश्चरण करने के लिए उस मन्त्र में जितने अक्षर हैं उतने लाख संख्या का जप करना होता है। ग्रहण काल में ग्रहण लगने से छूटने तक यदि उस मन्त्र का जप किया जाय तो अपने आप उतना ही लाख गुना फल उसको प्राप्त होता है। एक पूरे पुरश्चरण का फल ग्रहण काल मे मन्त्र का जप करने से प्राप्त होता है। अब यहाँ पर काल की महत्ता है। उस संख्या का जप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने के लिए मुझे कदाचित् अनेक महिने लगनेवाले थे लेकिन मैंने शास्त्र में प्रतिपादित योग्य समय में जप किया तो थोडे समय में ही अधिक फल प्राप्त हो गया।

इस प्रकार जैसे काल का महत्त्व है वैसेही ज्ञान का भी महत्त्व है। एक काम करना और उसे जानकर करना इसमें अन्तर है। कभी कभी ऐसा होता है - पिताजी ने कहा या सास ने कहा कि वहु पूजा कर लो। अव वहू को तो टी.व्ही. देखने की इच्छा थी लेकिन अव क्या करें! पूजा करने बैठ गई। पूजा तो करनी ही पडेगी! तो उसने जैसे तैसे पूजा तो कर ली। उसने डाँट के डर से पूजा की हो अथवा कैसे भी की हो, पूजा का फल उसे मिलेगा। लेकिन वही पूजा उसने श्रद्धा के साथ की, केवल सास ने कहा या और किसी ने कहा इसलिए नहीं की किन्तु उसने अपनी श्रद्धा को जागृत करके की-तो उसका फल अधिक मिलेगा। किसी ने कहा इसलिए मैं यह काम करता हूँ इसका एक फल है किन्तु उस काम को मैं श्रद्धा जागृत करके, अपनी इच्छा से, जानकर कर रहा हूँ - इसका फल निश्चित ही अधिक होता है।

आपने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' पढा होगा। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास का नाटक है। उसमें प्रियंवदा एवं शकुन्तला का एक संवाद आता है। दुष्यन्त दूर से सुन रहा है। ये छोटी छोटी लडकियाँ वृक्षों को, पौधों को पानी दे रही हैं और प्रियंवदा को शकुन्तला ने कहा, "हम लोगों को जल्दी-जल्दी पौधों को पानी देना चाहिए क्योंकि गुरूदेव ने कहा है", तो प्रियंवदा वोलती है - "न केवलं तातनियोग एव, अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु" केवल गुरूदेव की आज्ञा से हम लोगों को जल नहीं देना चाहिए। इन पौधों को अपने भाई मान कर प्रेम से सींचना चाहिए। अव एक दृष्टिकोण यह है कि गुरूदेव ने कहा है इसलिए इस काम को पूरा कर लेना है, और दूसरा दृष्टिकोण यह है कि नहीं ये मेरे भाई हैं। "वृक्ष वन्धु है" – देखिए परम्परा कितनी प्राचीन है। वह वोलती है। "न केवलं तातनियोग एव, अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु"

एक काम जव इतने प्रेम के साथ किया जाता है तो अपने आप वह काम अमूल्य हो जाता है। यहाँ पर हम लोग किसी काम को करने के लिए आये हैं, किसी काम की प्रक्रिया सीखने के लिए आये हैं तो किसलिए यह काम करना है? कैसे यह काम करना है? इसको भी जान लेना चाहिए।

ज्ञानेश्वरी में एक सुन्दर वात ज्ञानेश्वर महाराज ने कही - "कर्माचे डोळे ज्ञान। ते निर्दोष होआवे।" किसी भी कर्म का नेत्र ज्ञान होता है, ज्ञान यदि कर्म के साथ जुडता है तो कर्म की महत्ता वढ जाती है नहीं तो कर्म-कर्म ही रह जाता है। मै गाड़ी लेकर पचास किलोमीटर चलता गया, चलता गया, मैं किस दिशा में जा रहा हूँ, यह मैंने जाना नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और मैं गाड़ी चलाता रहा तो क्या लाभ? परिश्रम तो मेरा हुआ लेकिन वह परिश्रम सफल नही कहलाएगा। इसलिए रात्रि के समय गाड़ी चलाने वाला जरा सी अपनी गति को धीमी करके मील के पत्थर पर प्रकाश डालकर देख लेता है कि मैं जिस दिशा में जा रहा हूँ वही मेरी दिशा है या नहीं? आगे चलकर इसी मार्ग से मैं जिस स्थान पर पहुँचना चाहता हूँ? उस स्थान पर पहुचूँगा कि नहीं? इसलिए केवल तीव्र गति से गाड़ी चलाना पर्याप्त नहीं होता है। वह गाडी ठीक दिशा में चल रही है या नहीं? यह भी वीच-वीच में देख लेना आवश्यक होता है। संस्कार का काम हम लोग कर रहें हैं तो इस काम की दिशा क्या है? इसको यदि हम जानेगें नहीं तो लगता है, छः मास या एक वर्ष तक काम करेंगे। वाद में छोड़ देंगे। कई लोग यह काम, लोग अच्छा कहते हैं इसलिए करेगें। कदाचित् कई और प्रसिद्धि के दृष्टिकोण को लेकर करेंगे, कई जव देखेंगे कि इस काम में झंझट अधिक है और प्रसिद्धि कम है। तो दूसरा ऐसा काम करने लगेंगे जिससे तुरन्त नाम एवं प्रसिद्धि मिल सकती है। तो इस काम को छोड देंगे। कार्य में सातत्य रखना हो तो यह आवश्यक है कि हम इस कार्य की महत्ता को ठीक से समझें। इस कार्य की आवश्यकता को ध्यान में ले लें। इस कार्य के सिद्धांत को एवं कार्य की दिशा को अच्छी रीति से जान लें।

आज वालकों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा देने वाली, संस्कार देने वाली, उनको अधिक योग्य वनाने के लिए, उनको अधिक कुशल वनाने के लिए, प्रशिक्षण देनेवाली संस्थाएँ आपको दृष्टिगत होंगी। ये संस्थाएँ अच्छा ही काम करती हैं लेकिन इन संस्थाओं का काम और हमारा काम, इसमें अन्तर है। ये निश्चित रूप से एक शैक्षणिक काम कर रही है। लेकिन हमारा काम शैक्षणिक नहीं हैं, हमारा काम भगवत्भक्ति का है, इस वात को निरन्तर ध्यान में रखना चाहिए। भगवान् की भक्ति की वात किए विना भी विकास का काम किया जा सकता है, लेकिन हमारा काम वैसा नहीं है। हमारा काम भगवान् की भक्ति का काम है। और इसलिए आरम्भ में जव मैं संस्कार शिविरों में निरन्तर उपस्थित रहता था, तव मेरे समापन के भाषण में, मैं एक वात सवको याद दिलाता था। वार-वार उस वात की ओर संकेत करता था कि हम लोगों की दृष्टि में आनेवाले वालक, ये गोपाल के स्वरूप हैं, भगवान् के प्रतीक हैं, और हम लोग भगवान् की इन साकार प्रतिमाओं की पूजा करने का काम कर रहें हैं। इससे कार्यसिद्धी सहज होती है।

एक पूजा होती है जो हम मन्दिर में वैठकर करते हैं। घर में भी एक सुन्दर मन्दिर होता है, वहाँ पर सुन्दर वालकृष्ण को हमने पधराया है और अत्यन्त निष्ठा के साथ, श्रद्धा के साथ उसकी सेवा करतें हैं, उसकी पूजा करते हैं, उसकी आरती में तल्लीन होते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं, उसको भोग लगाने में आनन्द का अनुभव करते हैं। यह अत्यन्त अच्छी बात है। इसका एक विकसित रूप हम बाल संस्कार के कार्य में देखना चाहते हैं। वे ही बालकृष्ण, जो हमारे घर में है, हम उनको हमारे आस-पास बालकों के रूप में देखने का प्रयास करते हैं। क्योंकि हमारे भक्तिशास्त्र में भी यही कहा है कि हमारी भक्ति का आरम्भ मूर्तिपूजा से अवश्य होना चाहिए और मूर्ति पूजा निरन्तर चलती रहनी चाहिए। लेकिन केवल मूर्तिपूजा ही भक्ति है, ऐसी हमारी मान्यता नहीं होनी चाहिए। उस मूर्ति का विकास होते होते वह मूर्ति विराट में परिवर्तित होनी चाहिए। इसलिए आपने देखा होगा, अभी अभी भगवान् गणपति की पूजा का पर्व पूरा करके हम लोग यहां पर आये हैं। भगवान् गणेशजी को चतुर्थी के दिन पधराया। कितने साज-बाज के साथ कितने ठाट-बाट के साथ पधराया और कितनी निष्ठा के साथ उनकी सायं-प्रातः पूजा करते रहे। और कैसी-कैसी आरतियाँ और कितना सुन्दर दृश्य उनके आस-पास निर्माण करते रहे। लेकिन बड़ी अचरज की बात है कि जिस मूर्ति को इतनी निष्ठा के साथ हमने पधराया, उसकी सेवा पूजा की और अत्यन्त श्रद्धा के साथ उस प्रतिमा की ओर देखा, अनन्त-चतुर्दशी के दिन हम लोग उसी प्रतिमा को ले जाकर सागर में या नदी में विलीन कर देते हैं।

गणपति विसर्जन! यह विसर्जन क्या है? क्या हम गणपति को भूल गये? क्या हमने गणपति को छोड दिया? नही! आज तक हम गणपति की पूजा एक मृत्तिका की प्रतिमा में कर रहे थे, और अब हम प्रयास करेगें कि वह मृत्तिका की प्रतिमा अब न भी रहे तो भी हमारी वह प्रतिमा अब सागर के साथ, विराट के साथ, एकाकार हो जाये और उस प्रतिमा को, उस गणेश को, मै सभी में देखने का प्रयास करूँ। मैंने गणपति को नष्ट नहीं किया, मैंने गणपति को विसर्जित किया, और विसर्जन का एक अर्थ यह भी होता है - 'विशेष-सृजन'। मैंने उसका विराट में सृजन किया। वह एक संक्षेप में था, मैनें उसको विराट बना दिया। मेरी पूजा देवालय में बैठकर एक बालकृष्ण की चलती है, लेकिन मैनें उस बालकृष्ण को छोड़ा नही। मैनें उस बालकृष्ण को सभी बालकों में देखने का प्रयास किया। दृष्टि के इस विकास का ही नाम भक्ति है। भगवत् गीता में आप एक बात पढेगें-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति,
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। (६-३०)

भगवान् कहतें है "अर्जुन! जब एकान्त में बैठो और मेरी प्रतिमा की पूजा करो, उस समय यह अच्छी बात है कि तुम सबको मुझमे देखो, पूरे विश्व को मुझमें देखो, लेकिन जब पूजा करके, उस देवालय के बाहर आ जाओ, उस समय, एक प्रयास तुम्हारा यह भी होना चाहिए, कि तुम मुझे सब में देखो। जब पूजा करूँ तो सबको भगवान् में देखूँ और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब पूजा-घर से बाहर निकलूँ तो भगवान् को सबमें देखूँ।

तो यह विसर्जन भक्ति का त्याग नहीं, यह भक्ति का विकास है। हमारी प्रक्रिया इस भक्ति के विकास की प्रक्रिया है।

शिविर में हम लोग रोज एक प्रार्थना बोलते हैं...

"तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि, तुझमें यह सारा संसार,
इसी भावना से अन्तर भर, मिलूँ सभी से तुझे निहार।"

हे प्रभो! आप केवल एक स्थान में नहीं हैं, तो आप सर्वत्र है, सबके भीतर विराजमान है। इसलिए मैं जब किसी से मिलता हूँ, तो मेरी भावना, मैं किसी व्यक्ति से मिल रहा हूँ, ऐसी नहीं होनी चाहिए। मैं उस प्रभु की ही एक छोटी सी प्रतिमा के साथ बात-चीत करता हूँ। इस प्रकार की भावना जब लोगों के साथ बात-चीत करते हुए प्रामाणिकता के साथ अपने अन्तःकरण में जागृत होगी, तो आप अनुभव करेंगे, विश्व आपके लिए अनुकूल होगा। और आप जो भी करेंगे वह भगवान् की भक्ति के अन्तर्गत अपने आप आ जायेगा। एक तो सामान्य व्यवहार किया जाता है, और एक उस व्यवहार के पीछे उपर्युक्त दृष्टिकोण को लाया जाता है। तो क्या होता है, पता है? तब पूजा केवल १५ मिनट की पूजा नहीं रहती, तब पूजा आधे घण्टे की भी नहीं रहती। तब पूजा हो जाती है २४ घण्टों की। तब पूजा निरन्तर चलती है। तब जो कुछ होता है वह पूजा ही हो जाता है। जो बोले सो हरि कथा।

एक बार अन्तःकरण इन् भावनाओं के साथ एकाकार हो गया, कि फिर मुख में जो आता है वही भगवान् का नाम, मुख में जो बात आती है वही भगवान् की कथा, और जो कुछ अपने हाथों से होता है वही भगवान् की सेवा या पूजा। आपने वह सुन्दर श्लोक पढ़ा होगा, और याद भी किया होगा -

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।।

हे ठाकुर! मेरे द्वारा जो-जो कर्म किया जा रहा है वो आपकी पूजा का कर्म है। इसलिए पूजा का समय और पूजा रहित समय, ऐसा अन्तर नहीं रह जाता। और उसके पश्चात् जो होता है वह पूजा ही है, इस प्रकार की अवस्था हो जाती है। हमारा दृष्टिकोण भगवद्निष्ठ दृष्टिकोण है और हम लोग इस कार्य के मूल में इस ईश्वर निष्ठा को मानते हैं। और इसलिए हम भगवान् का कर्म करते हैं। इस प्रकार की निरन्तर भावना हमारे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तःकरण में होनी चाहिए। मैं, जो संस्कार केन्द्र का काम करती हूँ, मैं जो बालकों के उत्थान का काम कर रही हूँ, वह उन बालकों के लिए नहीं हैं, उन बालकों को तो उसका लाभ मिलेगा ही, यह उसका सह-उत्पादन है, लेकिन यह बात मूलतः मेरी ओर से भगवान् की आराधना के लिए है। यह बात हमारे अन्तःकरण में पहले जागृत हो जानी चाहिए। और इसलिए हम लोग नास्तिक होकर इस काम को नही कर सकते। हम लोग इस काम को आस्तिक होकर ही कर सकते हैं। तो आवश्यकता है भगवद्भक्ति की।

पश्चिम की यात्रा में बाल विकास के लिए चल रहे अनेक काम मैंने देखे। बालकों की विचार शक्ति को जागृत कराने हेतु वहाँ पर विविध उपक्रम चल रहे हैं, यह शैक्षणिक उपक्रम हैं। किंतु हमारा कार्यक्रम इस प्रकार का नहीं है। हमारा तो भक्ति का कार्यक्रम है। हम पूजा करने के लिए बैठे हैं। अब कभी कभी बालकों में दोष भी होते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए थोड़ा सा कठोर उपाय भी हम लोगों को करना पड़ता है। तो वह करना भी हमारी पूजा के अन्तर्गत आता है। हमारी पूजा विधि में भी ऐसा ही किया जाता है। ठाकुरजी की प्रतिमा पर जो पहले दिन के बासी पुष्प होते हैं, उन्हें पहले दूर किया जाता हैं। उसे निर्माल्य कहते है। उस निर्माल्य को पहले उतारते हैं। दोषापनयन करते हैं। जो-जो उसमें अशुद्धि है, जो-जो उसमें बासीपन है, जो-जो उसमें कल का है, उसे मैं निकाल डालूँ, उसको स्वच्छ करूँ, उसका प्रक्षालन करूँ। उसके पश्चात फिर नया चन्दन चढ़ाऊँ, फिर नए पुष्प चढ़ाऊँ, फिर नया तुलसीदल चढ़ाऊँ, फिर नया भोग धरूँ। जो-जो पुराना हो गया, जो-जो बासी हो गया, जो-जो योग्य नहीं रह गया, जो-जो निरुपयोगी हो गया, उसको हटाना, यह भी पूजा का एक अंश है। और इसलिए इस प्रकार के दोष यदि बालकों में हम पाते हैं, तो उनको दूर करने का प्रयास करना भी हमारी पूजा का एक अंग है।

जब हम यह काम करते हैं, तो आपको एक बात ध्यान में आएगी, कभी-कभी उस बालक को मेरे द्वारा किए जानेवाले कार्य की महत्ता का पता भी नहीं होगा, कभी-कभी उस बालक को ऐसा भी लगेगा, कि यह क्या किया जा रहा है? लेकिन उस समय यदि वह बालक हमारे लिए कृतज्ञ नहीं भी होगा, मैं क्या कर रही हूँ इसका पता उसको नहीं भी होगा, और इसकी महत्ता को वह नहीं भी जानेगा, तब भी हमारी बुद्धि में कोई अन्तर नहीं आएगा क्योंकि यह सब हम उस बालक के लिए नहीं कर रहें हैं। हम यह देख रहें हैं कि यदि मैंने इस बालक के लिए इस प्रकार का कोई अच्छा उपक्रम किया है तो वह परमात्मा को रिझाने के लिए किया है, परमात्मा की पूजा के रूप में किया है। और इसलिए इसके फल प्रदाता लोग नहीं, इसके फल देनेवाले ये बालक नहीं, लेकिन इसका

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फल देनेवाले वे परमात्मा हैं। मैंने एकान्त में किया है, लोकान्त में किया है, कम किया है, अधिक किया है, इसका मूल्यांकन समाज नहीं करेगा, इसका मूल्यांकन जिन बालकों के लिए मैं कर रही हूँ, वे बालक नहीं कर सकेंगे, इसका मूल्यांकन वे प्रभु करेंगे जिस प्रभु की भक्ति के रूप में मैंने इस काम को किया है।

यदि यह भाव अपने मन में आ गया तो एक बात तुरन्त होगी। हम कितनी भी समस्याएँ आए, विचलित नहीं होंगे। समाज के लोग कभी-कभी आलोचना करते हैं। जिनके लिए हम काम करते हैं, वे ही कभी-कभी हमारी आलोचना करते हैं। संसार के हर सन्त को इस स्थिति से गुजरना पड़ा है। ऐसा किसके साथ नहीं हुआ? लेकिन ऐसा होने पर भी, हमारा चित्त उससे विचलित नहीं होगा। क्योंकि हमें विश्वास है कि हमनें जो किया उस प्रभु के लिए किया और वही मेरे कार्य का मूल्यांकन कर सकता है। नहीं तो होता क्या है? हम कहते हैं 'समाज के लिए हमने इतना किया लेकिन समाज को उसकी मूल्य नहीं।'

अरे! समाज क्या है? मैंने उस समाज के लिए किया ही नहीं। मैंने उस प्रभु के लिए किया। इस समाज को मेरा मूल्य है कि नहीं? समाज मेरे मूल्यांकन को करने जितना योग्य है कि नहीं? प्रभु ही जानता है। लेकिन वह परमात्मा तो जानता है कि मैंने किस दृष्टिकोण से किया। मुझे समाज से किसी पुरस्कार की आवश्यकता नहीं, मुझे समाज अच्छा कहे, इसकी भी आवश्यकता नहीं। मैंने जो कुछ किया है, परमात्मा की भक्ति के रूप में किया है यह भावना होगी तो चाहे समाज मेरी आलोचना करें, या मेरा अभिनन्दन करें। न अभिनन्दन से मैं प्रफुल्लित हो जाऊँगा और न आलोचना से मैं डिगूँगा। मैं अपना काम करता रहूँगा। मैं अपना काम करता रहूँ इस प्रकार की, एकनिष्ठ भावना, ईश्वरनिष्ठा से, ईश्वर भक्ति से ही अपने आप अपने अन्तःकरण में धैर्य एवं स्थिरता के कारण आती है। अन्यथा थोड़ीसी आलोचना होते ही तुरन्त हम डिग जाएँगे 'हम तो इतना अच्छा कार्य कर रहे हैं और वे ऐसा बोलते है... अब क्या करें? हम घर में ही भले हैं।' यह तुरन्त आरम्भ हो जाता है, क्यों? और फिर कहीं से प्रेरणा पाने के लिए हमें किसी की ओर देखना पड़ता है! दूसरे से मैं प्रेरणा पाऊँ? नहीं, उसकी मुझे आवश्यकता न रहे। मैं स्वयं के भीतर से ही प्रेरणा प्राप्त करूँ क्योंकि आखिर हम जब तक किसी के ऊपर निर्भर रहेंगे, तब तक हमारा, हमारे कार्य में पूरा मन नहीं लगेगा, पूरा विश्वास नहीं जगेगा।

निरन्तर हमारे ध्यान में यह बात होनी चाहिए, कि मैं भगवान् की पूजा कर रही हूँ, मैं भगवान् की आराधना कर रही हूँ, यह सब मैं भगवान् की भक्ति के लिए कर रही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हूँ। मेरा उसमें अन्य कोई विचार या कोई भाव नहीं। जब इस प्रकार की भावना जागृत होगी, तो अपने आप जिस काम को हम करेंगे, उस काम को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो, शुद्ध भाव से करेंगे। पहली बात उससे कुछ पाने की इच्छा नहीं रखेंगे, और दूसरी बात, किसी भी प्रकार की आलोचना या अभिनन्दन आदि से हम कभी भी अपने काम से विचलित नही होंगे। यह छोटी बात नहीं है! अपने अन्तःकरण में अपने कार्य के प्रति इतनी श्रद्धा का जागृत हो जाना, इसका बहुत बड़ा परिणाम होता है। वे ही लोग निरन्तर इस प्रकार के काम कर सकते हैं, जिनके भीतर यह भगवद्भक्ति का भाव जागृत होता है। नहीं, तो एक दो वर्ष तक व्यक्ति काम करता है, और कहता है - 'कुछ दिखता नहीं है। कुछ उगता नहीं है।' हमारे अन्तःकरण में विचार यह होना चाहिए कि कुछ उगता है कि नहीं उगता है, इसका विचार मुझे नहीं करना है। मैंने जब यह जान लिया है कि कार्य की नींव शुद्ध है और यह कार्य आवश्यक है और कार्य की दिशा यही है, तो इसमें तुरन्त फल की आशा नहीं रखों। संसार के लोग करें चाहे न करें। मुझे इसको करते रहना है। मुझे कुछ मिले या न मिले, मुझे कार्यरत रहना चाहिए। कभी अपने भगवान् की भक्ति, भगवान् की पूजा करते समय, इस बात का विचार किया है कि लोग क्या कहेंगे? हम लोगों की ओर देखते नहीं क्योंकि हम जानते हैं कि मैं जो कर रहा हूँ, भगवान् के लिए कर रहा हूँ। तो हमारे इस पूरे कार्य का प्रथम बिन्दु यही है कि हमारा कार्य भगवान् की भक्ति का कार्य है। ईश्वरनिष्ठा इस कार्य का पहला सूत्र है। सबके भीतर भगवान् है और विभिन्न प्रकार से हमारे सामने आनेवाले लोगों में भगवान् का स्वरूप देखकर उनके साथ मुझे व्यवहार करना है। और इसलिए मैं, यद्यपि किसी अन्य से सम्पर्क करता हुआ दिखाई दूँ, तो भी वास्तविकता यह है कि मैं उसके साथ बात नहीं कर रहा हूँ, उसके भीतर बैठे हुए नारायण के साथ बात-चीत कर रहा हूँ। हम जो प्रार्थना रोज करते हैं उसको लिखनेवाले इस युग के महान सन्त का नाम था परम पूज्य प्रातःस्मरणीय हनुमान प्रसादजी पोद्दार, जो 'कल्याण' के आदि सम्पादक रहें। उन्होंने लिखा है -

"जीवों का कलरव जो दिन भर, सुनने में मेरे आवें।
तेरा ही गुणगान जान मन, प्रमुदित हो अति सुख पांवे।।"

लोग जो कुछ बोलते हैं, वह मुझे कैसे लगना चाहिए। वे कहते है, जिस प्रकार पंछियों की चहचहाट रहती है, उसी प्रकार लोगों के बोलने को मैं सुनता रहूँ। एवं परमात्मा का गुणगान चल रहा है ऐसा सोचकर आनन्दित होता रहूँ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि, तुझमें यह सारा संसार
इसी भावना से अन्तर भर, मिलूँ सभी से तुझे निहार।
प्रति पल निज इंद्रिय समूह से, जो भी कुछ आचार करूं
केवल तुझे रिझाने को बस, तेरा ही व्यवहार करूं।।

हमारी जिह्वा, नेत्र, हाथ, कान यह इन्द्रियों का समूह है। आदि इन्द्रियों के माध्यम से मैं जो कुछ काम कर रहा हूँ, वह किसलिए कर रहा हूँ? तो केवल ईश्वर को रिझाने के लिए कर रहा हूँ, यह सदैव याद रहे।

इस मेरे कार्य में, हे ठाकुर! केवल एक मात्र मेरा दृष्टिकोण है कि मैं तुम्हें रिझाऊँ, मैं तुम्हें प्रसन्न करूँ। संसार प्रसन्न होता है कि नहीं होता है? मुझे उसकी चिन्ता नहीं! संसार के लोग अनेक बार अपनी प्रतिक्रियाएँ स्वार्थ के कारण देते हैं। संसार के लोगों में अनेक प्रकार के विकार होते हैं। और कभी किसी के बारे में मत व्यक्त करते समय वे उसका विचार करते हैं। इसलिए लोग दूसरों को प्रसन्न करने के लिए झुठ भी वोलते हैं।

एक सास ने वहू से पूछा 'मैं कैसी दिखती हूँ?' यद्यपि वह असुन्दर है लेकिन वहू को तो यही कहना पड़ता है कि आप लक्ष्मीजी जैसी दिखती हो। वहाँ स्वार्थ की दृष्टि होती है कि कहीं सास मुझ पर वितुष्ट न हो जाए।

एक बार क्या हुआ? वादशाह अकवर ने वैंगन की सब्जी खायी। अच्छी लगी, तो विरवल से वात करते-करते, वादशाह ने कहा, "विरवल, वाह! कितनी वढ़िया सब्जी है, वैंगन की!" विरबल ने कहा, "वाह! जहाँपनाह! वैंगन तो सव सब्ज़ियों का राजा है।" जहाँपनाह ने कहा, "कैसे?" विरवल ने कहा, "देखो, किसी भी सब्जी के ऊपर मुकुट नहीं है लेकिन वैंगन के ऊपर मुकुट है। इसलिए वैंगन सव सब्ज़ियों का राजा है।" वात वहीं पर रुक गयी। दूसरे दिन राजा ने वैंगन की सब्जी खूव खायी। अव उसका जो परिणाम होना था, वह हुआ और वादशाह के पेट में दर्द होने लगा। दूसरे दिन राजा ने हैरान होकर विरवल से कहा, "विरवल! यह वैंगन की सब्जी वड़ी खराव है।" विरवल ने कहा, "विल्कुल ठीक वात है, हुजूर! और इसलिए तो भगवान् ने उस वैंगन की सब्जी में काँटे लगा दिये, सवसे खराव तो यही सब्जी है।" वादशाह ने कहा, "विरवल! कल जव मैंने कहा, वैंगन की सब्जी अच्छी है तो तुमने कहा कि वह राजा है, उस पर मुकुट लगाया है और आज जव मैने कहा वैंगन की सब्जी खराव है, तो तुमने कह दिया हाँ, यह वात भी ठीक है, उसमें काँटे लगा दिए, ऐसा विरोधाभास क्यो?" विरवल ने कहा, महाराज! एक सीधी वात है। मैं न तो भगवान् की भक्ति कर रहा हूँ और न में वैंगन की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्ति कर रहा हूँ। मैं न भगवान् का सेवक हूँ, न बैंगन का सेवक हूँ। मैं आपका सेवक हूँ, और आप जो कह दे उसमें हाँ में हाँ मिलाना मेरा काम है। कल आपने कहा कि बैंगन अच्छा है, तो मैंने अच्छा कह दिया। आज आपने कहा, बुरा है तो मैंने बुरा कह दिया। तो यहाँ पर जो बिरबल बोल रहा है उसमें, बिरबल का दृष्टिकोण, सत्य क्या है, यह नहीं है। लेकिन किससे मेरे राजा प्रसन्न हो जाएँगे, यह दृष्टिकोण है।

इस प्रकार लोग अपना स्वार्थ देखकर बात किया करते हैं। इसलिए संसार के लोगों की बात सर्वदा सत्य नहीं होती और इसलिए संसार के लोग सर्वदा सही-सही उत्तर आपको दे नहीं सकते। वे अपने स्वार्थ का विचार करके आपको उत्तर देंगे। और इसलिए न उनको रिझाने का प्रयास आप करेंगे और न ही सबको सन्तुष्ट रखने के लिए आपको हैरान होना पड़ेगा। उत्तम साधक का लक्षण यह है कि वह संसार के लोगों को रिझाने का प्रयास न करें। वह अपने अन्तःकरण से पूछ ले कि मैं जो भी कर्म कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ कि नहीं? वह अपने मन में एक ही विचार करें, ऐसा करने से मेरे प्रभू को क्या लगेगा?

वाल संस्कार का जो काम हम कर रहें हैं वह किसके लिए? न संचालकों को रिझाने के लिए, न वालकों का मनोरंजन करने के लिए, न समाज के कुछ बड़ों को प्रसन्न करने के लिए। मेरे ठाकुर को प्रसन्न करने के लिए, मैं प्रभु की भक्ति के रूप में यह काम कर रहा हूँ। इस प्रकार का भाव जब आपके अन्तःकरण में जागृत होगा, तो इस काम का दोलक, गुरुत्वाकर्षण अपने आप, आपके भीतर रहेगा और किसी के कहने या न कहने से आप विचलित नहीं होंगे। इसलिए निरन्तर इस भाव को अपने भीतर जागृत रखियेगा, मैं भगवान् की भक्ति का काम कर रहा हूँ। एकान्त में वैठकर जिस ठाकुर की सेवा, आराधना, पूजा मैं अपने घर की ठाकुर वाड़ी में करता हूँ, उसी ठाकुर की एक व्यापक पूजा करने का, उसे एक विराट रूप में देखकर पूजा करने का काम, यह संस्कार क्षेत्र का काम है। सवसे पहले हमारा दृष्टिकोण इस वात में स्पष्ट हो जाना चाहिए। ईश्वर निष्ठा, हमारे काम का पहला प्राण है। हम कोई वैठक भी लेते हैं तो उसके आरम्भ में श्लोक कहते हैं...

"वसुदेवसुतम् देवम्, कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दम्, कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम्।।"

कृष्ण के चरणों मे प्रणाम करके इस काम का आरम्भ करते हैं। इस काम के पूर्ण होने के पश्चात्, अपने अन्तःकरण से श्रीकृष्ण को याद करके उसके चरणों में इस काम के फल को अर्पण कर देते हैं। पूजा करने के पश्चात् हम लोग क्या वोलते हैं? आपको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पता है - "श्रीकृष्णार्पणमस्तु"।

उसी प्रकार संस्कार सेवा का यह काम करते समय हमारा मन निरन्तर यह कहता रहता है, 'मैनें श्रीकृष्ण के लिए किया, इसका फल क्या मिलता है? श्रीकृष्ण ही जाने!'

भगवद्भक्ति के वाद गीता परिवार का दूसरा सूत्र है 'भगवद्गीता'। भगवद्गीता एक महान ग्रन्थ है। भगवद्गीता हमारा प्राण ग्रन्थ है। संसार में असंख्य पुस्तके लिखी गई, संसार में अत्यन्त विस्तृत शास्त्र कहे गये। केवल हम भारत की वात करें, तो हमारे भारतीय परम्परा में, हिन्दू परम्परा में इतने विस्तीर्ण शास्त्र हैं कि उनका कोई पार नहीं। भगवान् शंकराचार्यजी ने लिखा "अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्।" शास्त्र अनन्त हैं, अपार है। उन्होंने एक स्थान पर यह कह दिया कि यह शब्दों का जंजाल वड़ा विचित्र है। इतने वड़े जंजाल में हम सभी ग्रन्थो को जाने, शास्त्रों का अध्ययन करें, यह हमारे पूरे जीवन में सम्भव नहीं होता। एक तो समस्त शास्त्रों कों जानना यह सम्भव नहीं हो पाता, और दूसरी वात विना शास्त्रों को जानें हम यदि चलेंगे तो कहीं न कहीं गलती कर देंगे। फिर हमें एक मध्यम मार्ग स्वीकारना पडता है और वह मध्यम मार्ग वड़ा सुन्दर है। पूरी मानवता के कल्याण के लिए परमात्मा के द्वारा दिया गया यदि कोई शास्त्र है तो वह 'भगवद्गीता' है। भगवद्गीता एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि अन्य ग्रन्थों को पढ़ने की आवश्यकता भी क्या है? जितने अच्छे अच्छे विचार संसार में अन्यत्र कहीं पर भी होंगे वे सभी के सभी विचार आपको एक भगवद्गीता के पढ़ने से अपने आप प्राप्त हो जायेंगे।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

(गीतामाहात्म्य)

अन्य शास्त्रों का विस्तार करने की क्या आवश्यकता है? भगवद्गीता को अच्छी तरह से जान लीजिएगा। जिसने भगवद्गीता को जाना उसने समस्त उत्तमोत्तम विचारों के सार को जान लिया। भगवद्गीता में वेदों का सार है। भगवद्गीता में मूल्यों का सार है। भगवद्गीता में समस्त शास्त्रों का सार है। गीता का वर्णन करते हुए भगवान् वेदव्यासजी कहते हैं -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

(गीतामाहात्म्य)

सव उपनिषद् मानों गऊएँ है और गऊओं को दूहने के लिए ग्वालों की आवश्यकता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। गोपाल कृष्ण भगवान् स्वयम् मानों ग्वाला है। उन्होंने उपनिषद् रूपी इन गऊओं को दूहा और दूध निकाला। कौनसा दूध मिला उपनिषदों को दोहने से? जो प्राप्त हुआ वह ज्ञान का दुग्ध ही 'भगवद्गीता' है। अर्जुन इसमें निमित्त है। अर्जुन हमारा प्रतीक है, क्योंकि अर्जुन के सामने जो समस्या है वह अकेले अर्जुन की नहीं वह हमारी भी समस्या है। अर्जुन हमारा प्रतीक है। 'भगवद्गीता' हमारे लिए क्यों उपयोगी है? अर्जुन को कही गयी इसलिए नहीं!

भगवान् शंकराचार्यजी कहते हैं "**अर्जुनम् निमित्तीकृत्य**"। अर्जुन को निमित्त करके भगवान् ने मेरे लिए गीता कही। अर्जुन के सामने जिस प्रकार की समस्या आयी उस प्रकार की समस्या मेरे सामने प्रतिपल आती है।

अर्जुन के सामने समस्या धर्म और अधर्म की नहीं थी, इस बात को ध्यान में रखियेगा। एक ओर धर्म है, दूसरी ओर अधर्म है, इन दोनों में क्या चुनना चाहिए? अर्जुन इतना नासमझ नही था कि उसको इस बात का भी पता नहीं कि धर्म को चुनना चाहिए। कभी कभी क्या होता है? दो धर्मों में आपसी संघर्ष निर्माण हो जाता है। धर्म का अर्थ है कर्तव्य। एक कर्तव्य और दूसरे कर्तव्य में संघर्ष निर्माण हो जाता है। यह करूँ कि वह करूँ? पत्नी की सुनूँ या माँ की सुनूँ?

महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सामने संघर्ष कैसा है? व्यक्तिगत कर्तव्य और सामाजिक कर्तव्य, इन दो कर्तव्यों में संघर्ष है। अर्जुन स्वयं देख रहा है कि मेरे सामने जो खड़े हैं -

आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् सर्खीस्तथा। (१-२६)

मेरे गुरुदेव, मेरे भाई, मेरे चाचा, मेरे अनेक सम्बन्धी मेरे सामने खड़े हैं। व्यक्तिगत् रूप में मुझे वस्तुतः इनसे प्रेम करना चाहिए। व्यक्तिगत रूप में मुझे इनका हरण कभी नहीं करना चाहिए।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।। (२-४)

अर्जुन ने भगवान् से कहा - "हे कृष्ण! भीष्म मेरे दादाजी हैं, द्रोणाचार्य मेरे गुरूदेव हैं। मुझे वास्तव में अपने हाथों में कमल के फूल लेकर, इनके चरणों की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिए। व्यक्तिगत कर्तव्य तो मेरा यह है और तुम मुझे कह रहे हो कि उन्हें मारों। व्यक्तिगत रूप में यह मुझसे अपराध होगा। एक बात! लेकिन युद्ध के स्थान पर आने के पश्चात् यदि मैं सामनेवालों को देखकर के युद्ध नहीं करता हूँ, तो मेरा क्षत्रिय धर्म, मेरा समाज धर्म नष्ट होगा।" अर्जुन के सामने समस्या है - व्यक्तिगत कर्तव्य और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामाजिक कर्तव्य, इन दोनों कर्तव्यों में से किस कर्तव्य का चयन मैं करूँ? व्यक्तिगत धर्म और समाज धर्म, इन दोनों में से मुझे क्या चुनना चाहिए?

कल्पना कीजिएगा, किसी सेनानी की माँ घरमें अस्वस्थ है और माँ की सेवा करना अत्यन्त आवश्यक है, लेकिन उसको तार आया है कि सीमा पर लड़ाई आरम्भ हुई है और आपको शीघ्र लौटकर आना है। तो वह सोचता है क्या करूँ? अब मेरे माँ की सेवा करना भी मेरा कर्तव्य है और मातृभूमि की सेवा करना भी मेरा कर्तव्य है। ऐसी अवस्था में वह सैनिक क्या सोचेगा? उस सैनिक की जैसी मनस्थिति होगी वैसी ही अर्जुन की है। उसे ऐसा लग रहा है कि यह भी मेरा कर्तव्य है और वह भी मेरा कर्तव्य है। इस प्रकार का संघर्ष हमारे मन में दिन में कितनी बार चलता है याद कीजिएगा। किसकी बात मै सुनूँ? इसकी बात सुनती हूँ तो यह दोष होता है और उनकी बात सुनती हूँ तो वह दोष होता है। क्या करना चाहिए? तो अर्जुन केवल वहाँ पर बैठा हुआ ऐतिहासिक अर्जुन नहीं, अपितु मन के भीतर बैठा हुआ अर्जुन है। उस अर्जुन का मन निरन्तर इस संघर्षों में झूलता रहता है। यह करूँ की वह करूँ! मेरा काम, मेरा कर्तव्य क्या है, क्या करने से मेरी बात सही होगी, ठीक होगी? ऐसे हर प्रसंग मे भगवद्गीता का मार्गदर्शन काम आता है। ऐसे संघर्ष की वेला में भगवान् ने जो सुन्दर शास्त्र सुनाया और निःशंक करके अर्जुन को अपने कर्तव्य के लिए प्रेरित किया उस शास्त्र का नाम 'भगवद्गीता' है। इसलिए भगवद्गीता हमारे सभी मानसिक संघर्षों से हमें बाहर निकालनेवाला ग्रन्थ है। हमारे साथ गीता होगी तो जीवन के किसी भी संग्राम में हम भूल नहीं करेगें। हम निश्चित रूप से उस संग्राम में विजयी होंगे। एक बात आप को याद रहे कि भगवद्गीता महाभारत का ही एक अंश है, एक अंग है, और महाभारत विजय का शास्त्र है। आप लोगों को पता होगा, महाभारत का मंगलाचरण है -

"नारायणम् नमस्कृत्यं नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीम् व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।"

"ततो जयमुदीरयेत्" का क्या अर्थ है - जय का अर्थ है महाभारत। कितने-कितने लोगों को प्रणाम करने के पश्चात् महाभारत को बोलना चाहिए? महाभारत का नाम ही 'जय' है। "जय नामात् इतिहासम्।" शास्त्रकारों ने महाभारत के लिए कहा है कि राजा को संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए महाभारत का श्रवण करके जाना चाहिए। 'रामायण' जीने का शास्त्र है, 'श्रीमद्भगवद्गीता' मरने का शास्त्र है और महाभारत जीतने का शास्त्र है। कैसे जीया जाये? किन आदर्शो को सामने रखा जाये? यह जानना है तो रामायण पढ़ों। हमारे जीवन के अन्त में जीवन का विसर्जन कैसे किया जाय?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परीक्षितजी की ओर चलो, भागवद की ओर चलो। जीवन भी सुन्दर हो जाएगा, यदि रामकथा हमारे जीवन में आ जाए। मन भी सुन्दर हो जाएगा, यदि परीक्षित की भावना हमारे जीवन में आ जाये। तथा संसार के संग्राम में विजयी होना है तो महाभारत का ज्ञान और निष्ठा हमारे भीतर जागृत होनी चाहिए। महाभारत विजय का शास्त्र है और इस विजय के शास्त्र का सार भगवद्गीता में है। जिसके पास भगवद्गीता होगी, जीवन के संग्राम में प्रतिपल वह अपना कदम आगें बढाता जायेगा, विजय को प्राप्त करता जायेगा।

गीता परिवार के पाँच सिद्धान्तों में भगवद्गीता को हम इसलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए एक वात के आग्रही वनते हैं कि हमारे शिविरों में तथा संस्कार कार्य में, भगवद्गीता का ज्ञान हमें सवको कराना चाहिए। हर एक को अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार भगवद्गीता को जान लेना चाहिए। दूसरों को सिखाते-सिखाते अपने आप हमारा भी चिन्तन होता है तथा हम भी उस गीता की अधिक गहराई में उतर सकते हैं। भगवद्गीता का विचार और अन्य वातों का विचार, फिर से हम कल करेगें। समय की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए मैं आज यहीं पर मेरी वाणी को विराम देता हूँ।

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय प्रवचन

इस पवित्र संस्कार कार्य के पीछे मौलिक चिन्तन क्या है? इसको जानने का प्रयास हम लोग कल कर रहे थे। हम जो कुछ करते हैं उस क्रिया के पीछे कुछ विचार हैं। वे विचार क्या हैं, उनका जब तक ठीक से पता नहीं लगेगा तब तक हमारी क्रिया की दिशा ठीक है या नहीं इसकों भी हम जान नहीं पायेंगें।

"कर्माचे डोळे ज्ञान, ते निर्दोष होआवे"

"कर्म के नेत्र ज्ञान है।" ज्ञानेश्वर महाराज कहतें हैं कि यदि नेत्र निर्दोष नहीं है तो क्रिया अन्धकार में होगी। एक नेत्रहीन व्यक्ति जब चलता है तो उसके गिरने की या भटकने की सम्भावना अधिक होती है। लेकिन जब उसके नेत्र हैं, तो यह सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। उसी प्रकार जिस कर्म के मार्ग पर हम लोग चलते हैं, उस कर्म के नेत्र क्या हैं? इसको हम देखने जा रहे हैं। और वह नेत्र है ज्ञान। इसलिए इस चिन्तन को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

गीता परिवार जिस दृष्टांत के ऊपर खड़ा है उसका विचार हम लोग कर रहें हैं और उसके पाँच सूत्रों में से एक सूत्र को कल हमने देखा - "भगवद्भक्ति" यह पहला सूत्र है।

सामर्थ्य आहे चळवळीचे। जो जो करील तयाचे।
परन्तु तेथे भगवंताचे। अधिष्ठान पाहिजे।।

केवल क्रिया नहीं, केवल कर्म नहीं, केवल आन्दोलन नहीं, केवल सामाजिक सेवा नहीं, तो भगवद्भक्ति के रूप में यह कार्य करना चाहिए। उससे क्या क्या लाभ हैं उसको कल हमने देखा। लेकिन कभी-कभी भगवान् की भक्ति करते करते भी समस्याएँ खड़ी होती हैं। सास भी भगवान् की पूजा करती है और बहू भी भगवान् की पूजा करती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजा होने के बाद दोनों का झगड़ा हो जाता है, किसी विषय को लेकर विवाद हो जाता है। इस पक्ष का व्यक्ति भी भगवान् की पूजा करता है और उस पक्ष का व्यक्ति भी भगवान् की पूजा करता है और दोनों आपस में मिलते हैं तो लड़ते हैं - अब ये बताइए कि यदि वास्तव में भगवान् की पूजा करने का ढंग हम लोगों ने सीखा है तो ऐसा वैमनस्य क्यों निर्माण होता है? एक ऐतिहासिक उदाहरण है। इससे पता चलेगा कि भगवान् की भक्ति करने वाले भी कैसे उलझन में होते हैं।

आपने इतिहास में पढ़ा होगा कि छत्रपति शिवाजी महाराज पर आक्रमण करने के लिए मिर्झाराजा जयसिंह आये और मिर्झाराजा जयसिंह ने छत्रपति शिवाजी पर विजय प्राप्त करने के लिए अतिरूद्र का आयोजन किया - भगवान् शिव की आराधना। अब शिवाजी महाराज भी शिवजी की आराधना करते हैं। भगवान् शिवजी के पिण्ड पर छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपनी आयु के चौदहवें वर्ष में अपनी अंगुली काटकर रक्त का अभिषेक करके प्रतिज्ञा की और हिन्दु राष्ट्र की स्थापना की। शिवाजी महाराज भी शिवजी की पूजा करते है और उनका पराभव करने के लिए आये हुए मिर्झाराजा जयसिंह भी शिवजी की ही पूजा करते है।

एक और उदाहरण देखिए - भगवान् श्रीराम रामेश्वर लिंग की स्थापना कर के भगवान् शिवजी की पूजा करते है और रावण भी शिवजी का भक्त है। देखो, अब जब इस प्रकार की समस्या पैदा होती है कि भगवान् की भक्ति तो ठीक, लेकिन भगवान् की भक्ति करनेवालों में आपस में कलह होता है। इस पर उपाय क्या है? इसका भी हमें पता होना चाहिए, और जब इस प्रकार की समस्या पैदा होती है तो हमें एक आधार चाहिए। रामजी की बात ठीक है या रावण की बात ठीक है? रामजी का भी कुछ सोचना है कुछ विचार हैं, रावण के भी कुछ विचार हैं, छत्रपति शिवाजी महाराज तथा मिर्झाराजा जयसिंह के भी कुछ विचार हैं। अब इनमे से किसकी बात को मान्यता दी जाये यह एक बड़ा प्रश्न है। थोडी कल्पना कीजियेगा कि ऐसे प्रसंग में शिवजी के सामने समस्या खडी होती होगी! यह भी मेरा भक्त है वह भी मेरा भक्त है। क्या किया जाए? शिवजी क्या करें.... रामजी को विजयी बनाए या रावण को विजयी बनाए, मिर्झाराजा जयसिंह को विजयी बनाए या शिवाजी महाराज को विजयी बनाए। तो यहाँ पर केवल ईश्वर भक्ति से काम नहीं चलता है। ईश्वरभक्ति के पीछे भी एक चिन्तन की आवश्यकता है और वह चिन्तन हम लोगों को प्राप्त होता है भगवद्गीता में। इसलिए गीता परिवार का दूसरा आधार भगवद्गीता है। हमें सर्वदा भगवद्गीता का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए क्योंकि भगवद्गीता हमारे विचारों को सुलझानेवाला ग्रन्थ है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल हम देख रहे थे, अर्जुन के सामने धर्म और अधर्म इन दोनों में से एक वात का चयन करने की सुविधा होती तो अर्जुन भी सही निर्णय कर सकता था। वह भी धर्म को चुनकर अधर्म का त्याग करना ही उचित समझता। अर्जुन तो क्या एक गंवार व्यक्ति भी यह वात समझ सकता है कि जव एक ओर धर्म और दूसरी ओर अधर्म है तो मुझे धर्म का ही पालन करना चाहिए। किन्तु समस्या तव आती है जव दो धर्मों में झगड़ा होता है। अर्जुन के सामने पैदा हुई समस्या, दो धर्मों का कलह है।

अर्जुन के सामने जो विवाद है वह दो धर्मो का विवाद कैसा है इसको समझना चाहिए। अर्जुन के सामने एक ओर व्यक्ति धर्म है और दूसरी ओर समाज धर्म है। मैं व्यक्तिगत रूप से किसी का भाई हूँ, किसी का भतीजा हूँ, किसी का शिष्य हूँ तो उनको मारना ठीक नहीं यह अर्जुन का व्यक्ति धर्म है, लेकिन मैं क्षत्रिय हूँ और सोच-विचार करके युद्ध के लिए समरांगण में आकर खड़ा हुआ हूँ, अव युद्ध करना मेरा धर्म है। भगवान् कहते हैं, युद्ध से भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं हो सकता -

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। (१८-४३)

युद्ध में आकर खडे होने के पश्चात्, मैं भाग जाँऊ तो मेरे समाज धर्म का नाश होता है। जव ऐसी अवस्था में अर्जुन के सामने समस्या है कि व्यक्तिगत् धर्म श्रेष्ठ है या समाज धर्म श्रेष्ठ है? मैनें विनोद में एक वात वतला दी थी ताकि आप लोगों के समझ में आ जायें। कभी-कभी हमारे सामने भी समस्या खड़ी होती हैं - 'माँ की वात सुँनू की पत्नी की वात सुनूँ?' पति के सामने खड़ा हो गया झगडा - 'भाई की वात सुनूँ की पति की वात सुनूँ' ऐसी हर समस्या की घडी में अर्जुन को निमित्त वनाकर भगवान् ने जो उपदेश दिया वह उपदेश मेरे लिए है, ऐसा मानकर भगवद्गीता का चिन्तन करनेवाला उस समस्या से बाहर निकल सकता है। और भगवान् की भक्ति भी, आराधना भी उसके लिए समस्या नहीं होती। तो भगवद्भक्ति भी किस प्रकार करनी चाहिए और भगवद्भक्ति के प्रकारों में भी श्रेष्ठता किसे देनी चाहिए इसका निर्णय वह कर सकता है। यह निर्णय सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता।

कल्पना कीजियेगा, तुलजाभवानी का मन्दिर टूट रहा है जो छत्रपति शिवाजी महाराज की कुलदेवी है। लोग उनको कह रहें हैं कि यह क्या कर रहें है आप! धर्म की संस्थापना के लिए आपने स्वराज्य की स्थापना की। अव मन्दिर टूट रहा है और आप यहाँ छिपकर वैठे हैं, यह क्या हैं? उस मन्दिर की रक्षा के लिए शिवाजी महाराज यदि जाते तो शिवाजी महाराज मरते। शिवाजी महाराज़ को उस समय क्या करना चाहिए?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाये या न जाये? आपको और एक समस्या मैं बतलाऊँगा। वह प्रसंग आपको याद होगा इसलिए प्रसंग का वर्णन मैं नहीं करूँगा। अशोक वाटिका में शिंशुप वृक्ष के ऊपर हनुमानजी बैठे है; भगवती सीताजी नीचे हैं, रावण वहाँ पर आया है। रावण ने सीताजी को समझाने का प्रयास किया। सीताजी ने रावण को फटकारा। उसका परिणाम यह हुआ कि रावण ने सीताजी को मारने के लिए तलवार निकाली। अब बताइये वहाँ पर हनुमानजी का कर्तव्य क्या है, धर्म क्या है? हनुमानजी बुद्धिमान् हैं, प्रतापसम्पन्न हैं और जब उनकी आराध्य माता-रूपिणी भगवती सीता के ऊपर आक्रमण करने का प्रयास रावण जैसा महापापी करता है तो हनुमानजी के स्थान पर हम लोग होते तो तुरन्त... कूद जाते और 'वॉक्सिंग', शुरू कर देते। लेकिन हनुमानजी 'बुद्धिमताम वरिष्ठ' है। वे जानते हैं कि मुझे क्या करना चाहिए -

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।। (४-१६)

भगवान् कहते हैं, अर्जुन क्या किया जाये और क्या न किया जायें इसका निर्णय करने में अच्छे-अच्छे की बुद्धि हार खा जाती है, विचलित हो जाती है। निर्णय नहीं कर पाती है -

'गहना कर्मणो गतिः' कर्म की गति गहन है। इसलिए हमारे सामने आनेवाली हर समस्या के समय हम ठीक से निर्णय कर पाए, इसके लिए जीवन में गीता की निरन्तर आवश्यकता है। अर्जुन को तो एक युद्ध लड़ना पडा लेकिन सन्त कहतें हैं कि संसार में सभी लोगों को निरन्तर युद्ध करना ही पड़ता है।

रात्रंदिन आम्हा युद्धाचा प्रसंग, अन्तर्बाह्य जग आणि मन...

दोनो मोर्चों पर लडना पडता है। पहला मोर्चा हमारे मन का है। मन में कुविचार आते हैं। मन में रावण है, मन में रामजी भी है, उनके बीच कलह है। मेरा निर्णय क्या होना चाहिए? मैं किसके पक्ष में जाँऊ? मेरे बाहर भी दो-दो प्रकार के लोग होते हैं, मैं किसके पक्ष में जाँऊ? ऐसा निर्णय करने की समस्या जब-जब हमारे सामने उपस्थित होती है, उस समय यदि आपने गीता को ठीक ढंग से पचाया होगा तो आपकी बुद्धि, आपकी प्रज्ञा तुरन्त आपको उत्तर देगी। कर्तव्य क्या है? इसका कोई भ्रम आपके मन में नहीं रहेगा। सब बिलकुल साफ साफ दिखाई पडेगा। प्रभु का निर्णय क्या है? जब कभी 'व्यक्तिधर्म' और 'समाजधर्म' इन दोनों में संघर्ष निर्माण होता है तो व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि उसे निरन्तर समाजधर्म को प्राथमिकता देनी चाहिए। उसको निश्चित रूप से समष्टि को प्रधानता देनी चाहिए। व्यष्टि का अर्थ है व्यक्ति और समष्टि का अर्थ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है समूह। समूह के भी अनेक प्रकार होते है। मैं एक व्यक्ति हूँ, मेरा एक परिवार है। परिवार भी एक समूह है। लेकिन परिवार से बड़ा समाज है। तो ऐसी स्थिति में मेरा कर्तव्य क्या होना चाहिए? यहाँ धर्म शास्त्र का निर्णय भी वही है, जो गीता का निर्णय है,

त्यजेत् एकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

जब-जब मेरे सामने यह विचार आता है कि इस बात को करूँ तो मेरा कल्याण है, लेकिन दूसरी बात को चुनूँ तो उसमें पूरे परिवार का कल्याण है, ऐसे प्रसंगों में व्यक्ति को अपनी बात छोड़ देनी चाहिए और परिवार की बात सोचनी चाहिए। निरन्तर समष्टि का प्रथम विचार करने का शिक्षण हमारा धर्म हमें देता है।

भगवान् श्रीराम के सामने यही प्रश्न था! व्यक्तिगत सिंहासन वे प्राप्त कर सकते थे। अधिकार की लड़ाई वे लड़ सकते थे। लेकिन प्रभु ने देखा, इसमें मेरे परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा? इसमें मेरे पिताजी के धर्म पालन का, उनके वचन पूर्ति का क्या होगा? और भगवान् ने वही किया जो गीता के अनुसार करना चाहिए था। व्यक्तिगत रूप में राज्य करना और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए स्वयं वन में चले जाना - भगवान् वन में चले गये। कोई आवश्यकता नहीं थी! अधिकार की लड़ाई लड़ते तो वे सिंहासन प्राप्त कर सकते थे। लेकिन तब वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम', 'श्रीमन् नारायण' नहीं कहलाते।

भगवान् श्रीराम के जीवन में और श्रीकृष्ण के जीवन में ऐसे कितने ही प्रसंग आपको मिलेंगे। सीताजी के परित्याग के समय भगवान् ने क्या सोचा? क्या भगवान् को भगवती सीताजी के प्रति कोई आशंका थी? किंचित मात्र भी नहीं थी। यदि प्रभु को थोडी भी आशंका होती तो बाद में यज्ञ के समय वे विवाह कर लेते। प्रभु ने कहा कि यदि प्रतीक भी रखना हो तो भी वह सीताजी की मूर्ति का ही बनना चाहिए क्योंकि राजा के रूप में मैंने सीता का त्याग समाज के लिए और मेरे सिंहासन की प्रतिष्ठा के लिए भले ही किया हो, मेरे अन्तःकरण में सीता के प्रति अनन्य निष्ठा है। मेरे हृदय की स्वामिनी सीताजी हैं। अब देखिए यहाँ पर भी प्रभु के सामने जो समस्या है वह कैसी है? इस बात को लेकर बहुत द्वंद्व होता है। यह विवाद निरन्तर चलता आया है। एक और पति के रूप में भगवान् का कर्तव्य है कि किसी भी स्थिति में पत्नी का संरक्षण किया जाए। लेकिन यह एक कर्तव्य है कि भगवान् अयोध्या के सिंहासन पर बैठे है और अयोध्या के सिंहासन के राजा होने के कारण मेरी जनता के अन्तःकरण में जिस बात के कारण आशंका भी निर्माण हो, ऐसा कोई कार्य मुझे नहीं करना चाहिए। ऐसा सोचकर प्रभु ने निरपवाद धर्म राज्य की स्थापना के लिए जान-बूझकर भगवती सीताजी का त्याग किया। उन्होंने पति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म का कर्तव्य किया? नहीं! क्या उन्होंने गलती की? नहीं! प्रभु ने जो भी किया ठीक किया। प्रभु का सोचना यही है कि निश्चित रूप से व्यक्ति धर्म से समाज धर्म वड़ा है, निश्चित रूप से मेरे परिवार के कर्तव्य से मेरे राज्य का कर्तव्य वड़ा है। इस बात से भगवती सीताजी भी सहमत है। भगवती सीताजी भी कोई साधारण पत्नी नहीं हैं। वह जानती हैं कि प्रभु ने निर्णय कैसे लिया। प्रभु की इसके पीछे क्या विचारधारा रही होगी और इसलिए कर्तव्य बुद्धि का विचार करके, जब दो कर्तव्यों में संघर्ष होता है तो उस समय मुझे अपेक्षाकृत विशाल कर्तव्य को स्वीकार करना चाहिए और छोटे कर्तव्य का त्याग करना चाहिए। यही हमारी परम्परा है।

अर्जुन के सामने भी यही समस्या है, और इस समय भगवान् का आदेश है कि तुम्हें युद्ध करना चाहिए, युद्ध तुम्हारा कर्तव्य है। भगवान् इन समस्त प्रसंगों से हम लोगों को सीख देते हैं कि मनुष्य को सर्वदा समाज धर्म का पालन पहले करना चाहिए। दो धर्मों में संघर्ष की स्थिति आनी ही नहीं चाहिए। लेकिन सम्भव है इस प्रकार का संघर्ष निर्माण हो गया तो वड़े धर्म के पालन के लिए छोटे धर्म का त्याग करना ही पड़ता है। वड़े धर्म के पालन के अन्तर्गत छोटा धर्म अपने आप महत्त्वहीन हो जाता है।

हमारे जीवन में वड़प्पन की भी एक वरीयता, एक क्रम होना चाहिए। एक अत्यन्त श्रेष्ठ महापुरुष ने कहा है कि पैसा महत्त्वपूर्ण है, लेकिन पदार्थ उससे भी महत्त्वपूर्ण है। पदार्थ से भी अधिक व्यक्ति को महत्त्व दो और व्यक्ति से भी संस्था अधिक महत्त्वपूर्ण है। संस्था से भी सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण है। नीचे पैसा है, फिर पदार्थ है, फिर व्यक्ति है, फिर संस्था है, और फिर सवसे ऊपर सिद्धान्त है। और जव ऊपर के और नीचे के किन्हीं दो वस्तुओं का संघर्ष हो जाये, उस समय हमें नीचे की वस्तु का त्याग करने के लिए सिद्ध होना चाहिए और ऊपर की वस्तु को स्वीकार करना चाहिए।

मेरी वृद्धावस्था हो गयी। जव मैं ५० साल या ५५ साल का हो गया और बच्चे मुझे समाज के कार्य से रोकते हैं तो मुझे वच्चों की वात विल्कुल नहीं सुननी चाहिए, समाज की सेवा मेरा पहला धर्म है। यदि मैं जवान हूँ और परिवार और समाज में संघर्ष आता है, तो परिवार की सेवा मेरा धर्म है। इस प्रकार यदि हमारी धर्म बुद्धि अत्यन्त स्पष्ट नहीं होगी तो निर्णय करने में हम गलतियाँ करेंगे। इस प्रकार की गलतियाँ हमसे न हो इसलिए भगवद्गीता का अध्ययन हमारे जीवन में अत्यन्त आवश्यक है। भगवद्गीता ने हमारे सामने इन सव वातों को खोलकर साफ़ साफ़ रख दिया है। और इसलिए यदि हम भगवद्गीता का चिन्तन करते रहेंगे तो अपने आप हमारी वुद्धि भी शुद्ध होती रहेगी। मनुष्य के जीवन की सफलता उसके द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों में छिपी हुई

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है, और यह निर्णय करने की कसौटी का समय कभी-कवार आता है। नित्य की वातों में निर्णय लेने की वात नहीं होती है। मैं पोहा खाऊँ? या उपमा खाऊँ? इसमें निर्णय करने की वात विशेष नहीं होती है। लेकिन मैं इसकी वात सुनूँ कि उसकी वात सुनूँ? कसौटी यहाँ पर होती है।

आप सव जाकर संस्कार का काम करने वाली हैं। जव तक अकेली आप संस्कार वर्ग का काम करेगी तव तक कोई समस्या नहीं, लेकिन आप के साथ एक और वहन है। यदि आपको ऐसे लगने लग गया कि यह मुझसे अधिक लोकप्रिय होने लग गयी है, अव यहाँ पर माथा-कूट निर्माण होने लग गई। संगठनों में प्रायः यही होता है। मुझे यह काम करना है, मुझे इस काम में रस भी है। लेकिन वह काम करती है और वह लोकप्रिय होती है तो मेरा माथा ठनकता है। अव यहाँ पर मेरा कर्तव्य क्या है? इसलिए हम लोगों को साफ़-साफ़ भगवद्श्रद्धा रखते हुए और भगवद्गीता का चिंतन करते हुए निर्णय लेने की पद्धति को अपनाना चाहिए। अव आप क्या करेंगी? पहला विकल्प आप यह ले लेंगी - 'या तो वह काम करेगी या मैं काम करूँगी, मेरी उसके साथ नहीं जमेगी। क्या इससे संस्कार का काम होगा? तो आइए! समाज को संस्कार देने से पूर्व हमें थोड़ा सा आत्म संस्कार का विचार करना चाहिए। ऐसी स्थिति में आपको शान्त भाव से एक वात का चिन्तन करना चाहिए। संस्कार वर्ग मेरे कारण अच्छा चलेगा कि उसके कारण अच्छा चलेगा? अव होता क्या है, संघर्ष होता है हमजिन्स अर्थात समान लोगो में। वड़े की वात सुनने के लिए हम सव तैयार होते हैं। वरावर के कार्यकर्ताओं में कौन किसका सुनें? यह प्रश्न निर्माण होता है। ऐसी स्थिति में विशुद्ध वुद्धि से परमात्मा के पास वैठकर हमें इस वात का चिन्तन करना चाहिए कि मेरे कारण यह काम अच्छा होगा कि उसके कारण यह काम अच्छा होगा? कभी-कभी कोई वात हम लोगों को गलत इसलिए लगती है कि वह उसने कही। उसने कही तो गलत होनी ही चाहिए। अनेक वार ऐसी वृत्ति कार्य का नाश करती है। इसलिए विशुद्ध वुद्धि से, ऐसी अवस्था में, हम लोगों को यह निर्णय करना चाहिए कि 'न मैं प्रमाण, न वह प्रमाण -कार्य प्रमाण' हम संस्कार का कार्य कर रहें हैं, और भगवान् की भक्ति के रूप में कर रहें हैं, तो किसके कारण वह काम अच्छा होगा इसे देखा जाए।

आपने वह कहानी सुनी होगी.... एक गुरूजी के दो शिष्य थे और दोनों शिष्य गुरूजी के प्रति वहुत श्रद्धावान थे। गुरूजी के प्रति दोनों की श्रद्धा पक्की थी लेकिन दोनों की आपस में अनवन थी। एक दिन शिष्यों के झगडों से तंग गुरूजी ने कहा "ठीक है भाई! अपना अपना काम वाँट लो।" गुरूजी की सेवा में काम का वँटवारा करते-करते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों पैरों की सेवा का भी बँटवारा हो गया। दाएँ पैर की सेवा 'एक' करेगा और बाएँ पैर की सेवा 'दूसरा' करेगा। एक दिन एक शिष्य अपने घर गया और गुरूजी के दोनों पैरों की सेवा का काम एक को ही करने के लिए कह दिया गया। दूसरे शिष्य ने पहले के पाव की सेवा करने से साफ अमान्य कर दिया। गुरूजी ने कहा, "लेकिन वह पैर दुखता है! थोड़ासा कर दो, अब वह तो चार दिन बाद आयेगा। तब तक एक पैर की सेवा से क्या होगा। थोड़ी देर तो कर दो!" उसने कहा "कोई बात नहीं", और उसने ऐसी सेवा की कि गुरूजी का पैर और अधिक दुखने लग गया। लौटके आने के बाद पहले शिष्य ने पूछा "आपका पैर इतना कैसे दुखने लग गया। पहले तो इतना नहीं दुखता था, अधिक कैसे दुखने लग गया।" तो गुरूजी ने कहा "मैंने उससे सेवा करने के लिए कहा और उसने सेवा इस ढंग से की।" "अच्छा! कोई बात नहीं! उसने मेरे पैर को इस प्रकार कष्ट दिया है क्या?" एक पत्थर उठाकर के लाया और बाएँ पैर के ऊपर जोर से पटका। परिणाम यह हुआ कि गुरूजी का बायाँ पैर ही तूट गया। गुरूजी पीडा के मारे चिल्लाने लगें। तो दूसरा भी शिष्य दौड़ता हुआ आया और पूछा "क्या हुआ?" तो गुरूजी ने कहा "इसने मेरा बायाँ पैर तोड़ दिया।" तो उसने ही एक पत्थर उठाकर लाया और दाहिना पैर भी तोड दिया।

यह बात केवल उन शिष्यों की नहीं है। यह हम लोगों की बात है। व्यक्तिगत अहंकार के कारण उस कार्य की गरिमा को न समझते हुए, उस कार्य के हृदय को न समझते हुए, हम लोग प्रायः कार्य का नाश इसी प्रकार किया करते हैं। यदि मैं बालकों को संस्कार दे रहा हूँ तो यह परमात्मा की सेवा का काम है। उसमें किसी प्रकार का व्यंग निर्माण होने से परमात्मा को दुःख होता है, इस बात का ध्यान रखकर हम लोगों को सदा सर्वदा सजग रहना चाहिए। यह सजगता हमारे में नहीं होती। इसलिए यदि हमारे अन्तःकरण में वास्तविक भक्ति है और यदि हमने गीता के विचारों को पचाया है तो हम दाहिना पैर या बाएँ पैर की चिंता नहीं करेंगे, दोनों पैर में भेद नहीं करेंगे। ये दोनों पैर एक ही गुरूजी के है इस बात को ध्यान में रखते हुए दोनों की समान सेवा करेंगे। कोई भी काम अन्य किसी के करने से ठीक होगा या नहीं? मैं करूँ तो ही ठीक होगा। यह सोचने के बजाए काम को अच्छा करने के लिए हर एक की विशेषता का सहयोग लो और उसे अच्छा बना दो क्योंकि यह परमात्मा की सेवा का काम है। वह मेरे द्वारा होता है तो मुझे उसके लिए आग्रह रखना चाहिए, अन्य किसी के द्वारा वह काम अच्छा होता है तो उसको करने देना चाहिए। इस प्रकार का विचार करनेवाला ही आध्यात्मिक भूमिका पर आरूढ़ होकर कार्य कर सकता है। और ऐसी अवस्था में जब वह कोई भी काम करता है, कोई भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्णय लेता है, तो उसका निर्णय गलत नहीं होता।

मुझे एक इटली का उदाहरण याद आता है। किस प्रकार एक व्यक्ति के, एक राष्ट्र के, अथवा एक परमात्मा की सेवा के समय हमें आत्मसंयम का अभ्यास करना चाहिए, इसके लिए यह इतिहास का बड़ा प्रसिद्ध उदाहरण है। इटली का प्रसिद्ध स्वातन्त्र्य संग्राम आरम्भ हुआ। इस स्वातन्त्र्य संग्राम में संघर्ष का वातावरण तैयार करनेवाले महात्मा का नाम था, जोसफ मैझीनी। मैझीनी ने इतने महान काम के लिए त्याग किया कि स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजी ने स्वयं उनका चरित्र लिखा है। स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजी कहा करते थे कि हम लोगों को मैझीनी के लिए ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए क्योंकि भारत को भी परमात्मा ने एक मैझीनी दिया - 'समर्थ रामदास'। जिस प्रकार शिवाजी महाराज के कार्य की भूमिका रामदास स्वामी के शिष्यों ने तैयार की उसी प्रकार इटली के इतिहास में स्वतन्त्रता की भूमिका को तैयार करने का काम जोसफ मैझीनी ने किया। जोसफ मैझीनी ने पूरे लोगों में प्रचार करके लोगों के भीतर स्वातन्त्र्य संग्राम की ज्वाला को निर्माण करके उनको युद्ध के लिए तैयार तो किया लेकिन जब युद्ध की बारी आयी, तब उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं नेता हूँ। मैं सेनापति हो जाऊँगा। यह उनके ध्यान में था कि सेनापति होना मेरा काम नहीं है। उन्होंने कहा सेनापति का काम गारीबाल्डी को सौंप देना चाहिए। गारीबाल्डी तब सेनापति बना। क्योंकि जोसफ मैझीनी ने एक बात देखी, सेनापति बनने से मेरा नाम बड़ा होगा। सेनापति बनने से मेरा अधिकार अधिक होगा। सेनापति बनने से लाखों की सेना मेरी बात को सुनेगी। लेकिन मैं वास्तव में उस काम के लिए योग्य न होने के कारण गारीबाल्डी को वहाँ पर सेनापति बनाना चाहिए। गारीबाल्डी के कारण यह सेवा ज्यादा अच्छी होगी। ऐसा मानकर गारीबाल्डी को सेनापति पद दिया गया। गारीबाल्डी उत्तम सेनापति था। गारीबाल्डी ने युद्ध जीता। अब युद्ध जीतने के पश्चात् गारीबाल्डी यह कह सकता था कि मैं स्वयं राजा बनूँगा और सत्ता का केन्द्र मेरे पास होना चाहिए क्योंकि मैंने युद्ध जीता है। मैझीनी ने गारीबाल्डी के भीतर देशप्रेम की उत्कट भावना निर्माण की है। व्यक्ति से काम श्रेष्ठ है, और इसलिए गारीबाल्डी ने भी यह कहा कि यद्यपि सेनापति के रूप में युद्ध करने का कर्तव्य मेरा था और मैंने वह अच्छी तरह किया है लेकिन राज्य कैसे चलाया जाता है इसका मुझे पता नहीं है। इसलिए अब राजा के पद पर काऊर को बैठना चाहिए। समाज में वातावरण तैयार किया मैझीनी ने, युद्ध किया गारीबाल्डी ने और राज्य मिला काऊर को। इसके कारण इटली की इतनी प्रगति हुई। जब प्रत्येक व्यक्ति, मेरे द्वारा यह सेवा अच्छी होगी अथवा अन्यों के द्वारा अच्छी होगी, इसका विचार करके आत्म संयम करता है तब जाकर समाज की भलाई होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसलिए इस आत्म मर्यादा को जानना भी वहुत आवश्यक होता है।

आपको पता होगा, गांधीजी ने कितना वड़ा काम लोगों में जागरण के लिए किया। जव हम लोग अपने देश की आजादी के ५० वर्ष मनाने की मनःस्थिति में है, हम लोगों को यह वात ध्यान में रखनी चाहिए कि १५ अगस्त १९४७ के दिन जिस समय हमारी राजधानी दिल्ली में इतना वड़ा उत्सव चल रहा था, उस समय इस सम्पूर्ण समाज को आन्दोलित करनेवाले महात्माजी दिल्ली में नहीं थे। उस समय वे नौवाँख़ाली में विभाजन के कारण निर्माण हुई समस्याओं में जो ग्रस्त, दुःखी लोग थे, उनकी सेवा में लग गये। गांधीजी दिल्ली नहीं गये।

छत्रपति शिवाजी महाराज सिंहासन पर वैठे। कितना वड़ा उत्सव हुआ। छत्रपति शिवाजी महाराज ने स्वयं रामदास स्वामीजी को वुलाया लेकिन रामदास स्वामीजी वहाँ नहीं गये -

"दास डोंगरी रहातो - उत्सव देवाचा पहातो।।"

वे नहीं गये क्योंकि वे जानते थे मेरा कर्तव्य पूर्ण हुआ। अव शिवाजी महाराज काम करेंगे। मेरा कर्तव्य यहाँ तक था अव शिवाजी महाराज अपना काम करेंगे। इस प्रकार स्वयं अपने को महत्त्वपूर्ण वनाना या कार्य को महत्त्वपूर्ण वनाना इसका विवेक हमारे अन्तःकरण में निरन्तर जागृत होना चाहिए।

मिर्झाराजा जयसिंह और छत्रपति शिवाजी महाराज इनके अन्तर्गत संघर्ष से मैनें अपनी वात कों आरम्भ किया था। छत्रपति शिवाजी महाराज का उस समय मिर्झाराजा जयसिंह को लिखा हुआ एक पत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह पत्र इस वात की पुष्टि करता है कि शिवाजी महाराज ने किस प्रकार भगवद्गीता को पचाया है। मिर्झाराजा उस समय शत्रु के रूप में आया था। शत्रु का प्रतिनिधी वनकर आया था, वड़ी सेनाएँ लेकर आया था, युद्ध करने के लिए आया था। शिवाजी महाराज ने लिखा है - 'मिर्झाराजा, ध्यान में रखियेगा मुझे कोई व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं है। मुझे केवल एक वात की इच्छा है कि इस देश में राज्य हिन्दुओं का होना चाहिए, इसलिए आप दिल्ली के राजा वन जाइएँ और मैं आपके राज्य का सेनापति वनकर आपकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ। दुर्दैव से हम शेरों को आपस में लड़ा कर इस देश के ऊपर सिआर राज्य कर रहें है। हम शेरों को जानना चाहिए कि हम लोगों को लड़ाने में वड़ी चतुराई से काम लिया जा रहा है, और इसलिए आप राजा वन जाइए। आपको मैं राजा वनाता हूँ। आपका सेनापति वनकर मैं काम करता हूँ। शिवाजी महाराज का साम्राज्य स्थापित हो, यह मेरी आकांक्षा नही है। लेकिन हिन्दू राष्ट्र की निर्मिति हो यह मेरी आकांक्षा है।' व्यक्तिगत रूप में मेरा राज्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बन जाये ऐसे कहनेवाले बहुत थे लेकिन शिवाजी महाराज एक ऐसे व्यक्ति है जो स्वयं अपने एक पत्र में साफ साफ लिख देते हैं 'मैं आपको वचन देता हूँ कि राजा आप बनेंगे, मैं आपका सेनापति रहूँगा और आप राज्य करेंगे।'

हमें सामाजिक हित के लिए एकत्र होना चाहिए। इस प्रकार की भूमिका जब हमारे मन में आती है तो कार्य विस्तारित होता है। संस्कार का काम करते समय मेरे द्वारा यह काम अच्छा होगा या उसके द्वारा अच्छा होगा, इस बात को हम निरन्तर सोचते रहें एवं कार्य को प्रधानता देते रहें। मैं प्रधान हूँ ऐसा कभी नहीं मानें। कभी-कभी स्वयं को प्रधानता देने की कामना के कारण हम कार्य का नाश करते हैं। इस बात का निरन्तर ध्यान रखना ही भगवान् की भक्ति होगी। शिवाजी महाराज भी शिवजी की पूजा करते हैं, और मिर्झाराजा जयसिंह भी शिवाजी महाराज के पराभव करने हेतु अतिरूद्र करने के लिए शिवजी की पूजा करते हैं। तो यह भगवद्भक्ति हुई। लेकिन यह अन्धी भगवद्भक्ति हुई। इसलिए हमारी भक्ति में भी ज्ञान की आवश्यकता है। हमारी भक्ति में विवेक की आवश्यकता है। यह विवेक हमारे भीतर जागृत करने का काम भगवद्गीता करती है। इस प्रकार का निर्णय व्यक्ति क्यों नहीं लेता? यह साफ़-साफ़ बात है कि जब हम संस्कार का काम कर रहें हैं और संस्कार के काम में मुझे यह ध्यान में भी आ रहा है कि उसके कारण यह काम अच्छा होगा तब भी मैं वहाँ पर अपना घोड़ा आगे क्यों दौड़ाता हूँ? भगवद्गीता कहती है इसका कारण बुद्धि शुद्ध नहीं हैं। बुद्धि में कहीं अशुद्धि आयी हैं। भगवद्गीता का आग्रह है कि सबसे पहले अपनी बुद्धि को शुद्ध करों।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। (१८-५१)

बुद्धि को स्थिर करने के लिए भगवद्गीता है। हमारे जीवन में हमारा सबसे बड़ा सम्बल, हमारी बुद्धि है। संसार में जो भी युद्ध होते हैं, वे युद्ध सफल कब होते हैं? चाणक्य के एक सूत्र में लिखा है -

नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मागान्मम।

चाणक्य भगवान् से प्रार्थना करते हैं, हे मेरे प्रभो! नंद का उच्छेदन करने के लिए जिस विशुद्ध बुद्धि ने मेरा साथ दिया, वह मेरी विशुद्ध बुद्धि मेरे से दूर न हो जाये। संसार में कोई भी मुझसे दूर हो जाएँ लेकिन इस शुद्ध बुद्धि कि आराधना अत्यन्त आवश्यक है। चाणक्य की बुद्धि कितनी विशुद्ध है, आपने दूरदर्शन पर चाणक्य की मालिका देखी होगी। नहीं देखी होगी तो कही से मँगा कर देखना चाहिए। चाणक्य की मालिका में, एक प्रसंग बड़ा सुन्दर है। चन्द्रगुप्त की विजय हुई। चन्द्रगुप्त की विजय के पश्चात नन्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का महामात्य, राक्षस पकड़ा गया। राक्षस का वध करने का निश्चय किया गया। उस समय सब लोगों को ऐसा लगने लग गया कि भले ही यह नन्द का सेवक था, लेकिन यह आदमी बड़े काम का है। इतने भले आदमी को मार डाला जाएगा। क्या होगा? महामात्य को सूली पर लटकाने की पूरी तैयारी हो गयी और चाणक्य वहाँ पहुँचते। राक्षस को देखते ही और चाणक्य कहते हैं, "महामात्य राक्षस, आपकी सजा बदली जाती है कि चन्द्रगुप्त का महामन्त्री पद आपको सँभालना है।" शत्रु का यह महामात्य रहा हुआ है। लेकिन कोई शत्रु है इसलिए वह त्याज्य नहीं हो जाता। यदि उसके गुणों का उपयोग मेरे राष्ट्र के लिए, चन्द्रगुप्त के राज्य को महान बनाने के लिए किया जा सकता है, तो मुझे करना चाहिए। आर्य चाणक्य ने इस प्रकार राष्ट्र का निर्माण किया है। विशुद्ध बुद्धि का यह लक्षण है। यदि चाणक्य यह कहते या चन्द्रगुप्त यह कहता कि उस दुष्ट ने शत्रु का साथ दिया है इसलिए इसको मार डालना चाहिए। भले ही व्यक्तिगत् द्वेष से उसको मार डालते, लेकिन राष्ट्र का भला नहीं करते और जिस निष्ठा के साथ महामात्य राक्षस ने नन्द की सेवा की उसी निष्ठा के साथ महामात्य राक्षस ने चन्द्रगुप्त की भी सेवा की। इसलिए चन्द्रगुप्त का राज्य अत्यन्त श्रेष्ठ राज्य बना।

मुझे अब्राहम् लिंकन की याद आती है। लिंकन अमेरिका के एक अत्यन्त श्रेष्ठ राष्ट्रपति रहे। उनके एक सर सेनापति थे, लोग आकर उनके बारे में शिकायतें करते थे, "उसने ऐसा किया, उसने वैसा किया।" चुगलीखोर चुगलियाँ करते ही हैं। अब्राहम लिंकन सेनापति का मूल्य जानते थे। लिंकन कहते थे, "ठीक बात है।" चुग़लीखौर कहते थे - "महाराज! आपके विरुद्ध वह षड़यन्त्र कर रहा है।" लिंकन कहते थे, "ठीक है।" अब लोगों ने सभी प्रकार की चुगलियाँ कर ली। लेकिन उसकी गुणवत्ता को लिंकन जानते थे। लिंकन यह भी जानते थे कि यह व्यक्ति मुझसे द्वेष करता है। लेकिन लिंकन ने विचार किया कि यह व्यक्ति मुझसे द्वेष करता है, यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह व्यक्ति हमारे राष्ट्र का भला कर रहा है, अमेरिका की सेना को इसने इतनी सफल बनाया है और इसलिए इसको पद से नहीं हटाना चाहिए। विनोद की बात है, एक दिन आकर किसी ने कहा, "महाराज! आपने उसको पद पर रहने दिया, आपको पता है वह शराब पीता है।" लिंकन ने पूछा, "कौन से ब्राण्ड की पीता है। पूछने वाला दंग रह गया। लिंकन ने कहा, "जिस ब्राण्ड की शराब पीकर वह अच्छा काम करता वो ही ब्राण्ड मैं अपने सभी सेनापतियों को पिलाना शुरू कर दूँ।" लिंकन की बुद्धि साफ़ है। यदि व्यक्तिगत दृष्टि से कोई मुझसे द्वेष करता है, तो वह बात गौण है। वह राष्ट्र का भला करता है या नहीं करता है यह महत्त्वपूर्ण है। लिंकन को एकबार युद्ध भी करना पड़ा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युद्ध का कोई दोष उनके ऊपर आया नहीं। लिंकन ने कहा "युद्ध मेरे ऊपर लादा जा रहा है। मैं किसी से द्वेष नहीं करता हूँ। सभी से प्रेम करता हूँ, लेकिन इस युद्ध के लिए मुझे प्रेरित किया गया। अब कोई उपाय नहीं रहा।"

भगवद्गीता में भी यही बात है। भगवान् ने युद्ध रोकने के लिए सभी प्रकार के प्रयास कर लिये हैं। इसलिए अब युद्ध करना भी धर्म हो गया। लेकिन प्रभू ने उस समय यह देखा कि न्याय की स्थापना कैसी होगी, धर्म कैसे बचेगा। और इसलिए भगवान् कृष्ण ने महाभारत में स्वयं के ऊपर अनेक कलंकों को लेकर भी अर्जुन को और पाण्डवों को विजयी बनाने का प्रयास किया है। कौरवों और पाण्डवों में यही तो एक विभेदकारी बात है। कौरवों के पक्ष में सभी लोग व्यक्तिगत निर्णय पर अड़े हुए हैं। "भीष्माचार्य जब तक युद्ध में रहेंगे तब तक मैं नहीं लड़ूँगा" ऐसा कहकर कर्ण जाकर दूर बैठ गया। यह व्यक्तिगत अहंकार था। भगवान् कृष्ण को तो यही चाहिए था। यदि भीष्माचार्य, कर्ण यह सब साथ लड़ते तो पाण्डवों के लिए यह भारी पड़ जाता। भीष्माचार्य का भी व्यक्तिगत अहंकार है - "मैं शिखण्डी के ऊपर बाण नहीं चलाऊँगा।" व्यक्तिगत अहंकार के कारण सब कौरव दुर्बल हुए हैं, इस बात को भगवान् श्रीकृष्ण जानते हैं। अब भगवान् श्रीकृष्ण की ओर देखिए। भगवान् को पता है कि मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं यहाँ पर किसी प्रकार का युद्ध नहीं लड़ूँगा, मैं किसी प्रकार का शस्त्र हाथ में नहीं लूँगा। लेकिन जयद्रथ के वध के प्रसंग में जब अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर ली कि सूर्यास्त के पूर्व यदि जयद्रथ का वध नहीं किया तो मैं अपने आप को जला लूँगा। भगवान् को अब बड़ी चिन्ता हुई। आप पढ़ेंगे महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण ने उस रात्रि में अपने सारथी दारूक से कहा, "दारूक! कल युद्ध में मेरा रथ भी साथ में रहेगा। रथ खाली रहेगा, पूरे शस्त्र से भरे हुए रथ को आप चलातें रहेंगे। और मेरे अर्जुन के रथ के साथ साथ तुम रथ दौड़ाते रहोंगे।" दारूक ने पूछा "किसलिए?" भगवान् ने कहा, "दारूक! मुझे पूरा विश्वास है कि कौरव कल प्रतिरक्षात्मक युद्ध करनेवाले हैं, और द्रौणाचार्य महाराज पद्मव्यूह की रचना करने वाले है। पद्मव्यूह के केसर स्थान में जयद्रथ को रखा जाएगा। कल प्रयास किया जाएगा कि किसी प्रकार अर्जुन जयद्रथ तक नहीं पहुँचे। मैं देखता रहूँगा और समय पर यदि अर्जुन कल जयद्रथ तक पहुँचता नहीं है, तो मैं अर्जुन के रथ से अपने रथ में आकर बैठूँगा और युद्ध करूँगा, जयद्रथ को मैं मारूँगा।" दारूक ने पूछा "आपकी प्रतिज्ञा?" भगवान् ने कहा "प्रतिज्ञा की ऐसी तैसी! अर्जुन बचना चाहिए क्योंकि मुझे यह युद्ध जीतना है।" यहाँ पर यदि भगवान् इस प्रकार जयद्रथ को मार डालते तो भगवान् की प्रतिज्ञा का क्या होता? भगवान् की कीर्ति का क्या होता? भगवान् ने कहा "व्यक्तिगत् कीर्ति चाहे जहाँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज़ाए जाने दे, लेकिन हमारी सेना जीतनी चाहिए। पाँडव जीतने चाहिए।" यही भगवद्गीता है और यही हमारे धर्म का सार है। हमारे अन्तःकरण में सर्वदा यह बात आनी चाहिए कि मैं जीतू कि मेरा परिवार जीते? परिवार जीतना चाहिए। मैं हाँरू , मेरे परिवार का नाम बड़ा हो। मेरे समाज का नाम बड़ा हो या मेरा परिवार बड़ा हो? मेरा परिवार पीछे हटना चाहिए समाज का नाम बड़ा होना चाहिए। मेरे राष्ट्र का नाम बड़ा होना चाहिए, मेरे समाज का नाम वाद में -

"आधी लगीन कोंडाण्याचे मग रायबाचे!"

तानाजी के इस वाक्य में गीता आती है। इसे ध्यान में रखना। यह निर्णय जिस विशुद्ध बुद्धि से होता है, उस विशुद्ध बुद्धि को प्राप्त कैसे किया जाता है? इन सभी के तन्त्र भगवान् ने भगवद्गीता में बताए हैं। भगवान् को भगवद्गीता में इतना ही बतलाना है कि बुद्धि को विशुद्ध रखकर निर्णय कीजिएगा। वे निर्णय व्यक्ति से परिवार बड़ा, परिवार से समाज बड़ा, समाज से राष्ट्र बड़ा, राष्ट्र से धर्म बड़ा - इस बात को ध्यान में रखकर लीजिएगा। और यह निर्णय लेने के लिए, बुद्धि को शुद्ध करना है। तो उसे शुद्ध करने के लिए राग और द्वेष का त्याग कीजिएगा। "रागद्वेषौ व्युदस्य च।" हम निर्णय गलत करते हैं, इसका कारण कहीं न कहीं हमारा क्रोध है, हमारी आसक्ति है।

पता होता है कि गुलाबजामुन खाने से मेरा स्वास्थ्य ज्यादा खराब होता है। लेकिन मधुमेह होने पर भी पेटू आदमी गुलाबजामुन चाव से खाता है क्योंकि उस गुलाबजामून से उसे आसक्ति है। उसे मिठाई अच्छी लगती है। यदि वह भगवद्गीता का अनुयायी होगा तब निश्चित रूप से यह कहेगा कि, यह पदार्थ मुझे कितना भी अच्छा लगता हो, मेरे स्वास्थ्य के लिए यह अच्छा नहीं है, मुझे यह नहीं खाना चाहिए। कहीं-कहीं आसक्ति के कारण हम गलतियाँ करते हैं और कहीं-कहीं द्वेष के कारण गलतियाँ करते हैं।

"तेरा वैभव अमर रहें माँ हम दिन चार रहे न रहें।"

मनुष्य का जीवन बुदबुदे के समान, बुल-बुले के समान है। और ऐसे क्षणभंगुर जीवन में हम अपने अहंकार के कारण यदि कोई गलत निर्णय लेते हैं और किसी कार्य का नाश करते हैं तो यह हमारा अपराध है। इसलिए बुद्धि को शुद्ध करके जब कभी हम यह देखें कि मुझसे भी अच्छा काम दूसरी कोई करती हैं, तो मैं उनकी सहयोगिनी बन जाऊँ, उनके साथ अच्छी तरह से काम करूँ यह मेरा कर्तव्य है।

एक बात मैं आपको प्रामाणिकता से बतलाता हूँ कि हमारे संजू भैया मुझसे अधिक अच्छा काम करते हैं। और इसलिए मुझे भी लगता है कि जब कभी मैं यहाँ आऊँ उनसे भी कुछ सीखूँ। जिस प्रकार उन्होंने मेरे काम को बढ़ाया वह अनोखा है। थोड़ी-बहुत बातों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में मैं उनको मार्गदर्शन करता हूँ और मुझे यह भविष्य में भी करना होगा। लेकिन मैने २०% काम किया होगा, तो इस काम को ८०% उन्होंने बढ़ाया। मुझे यह मान लेना चाहिए। और इसलिए जब कभी इन बातों की हम लोग चर्चा करते हैं तब मुझे उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यहाँ पर मुझे कब आना कब नहीं आना है? क्या बोलना और क्या नहीं बोलना है? कितने समय तक, कब बोलना है? कब नहीं बोलना है? मैं उनकी बात सुनता हूँ। मैं यह आपसे भी कहता हूँ कि आपके सहयोगियों में जब कभी अच्छे गुण आप देखेंगे तो उनको आगे लाइए। जब आप उनको आगे लायेंगे उस समय दो बातें होंगी। एक तो आपको बड़ा समाधान मिलेगा और आपके जीवन में सौंदर्य आयेगा। केवल व्यक्तिगत रूप में बड़े हो जाना जीवन को सुन्दर नहीं बनाता। जीवन में वह बड़ा है जो दूसरों को आगें लाता है। बड़ों का बडप्पन छोटों को आगे बढ़ाने में ही है। इसलिए जब-जब छोटे कार्यकर्ता तैयार होते हैं तो उन कार्यकर्ताओं को आगे लाइयेगा। आप आगे चलकर देखेंगे कि आप अकेले नहीं है। आपके साथ कार्यकर्ताओं का एक माहौल बन जाएगा। आप किसी काम को एकाध बार नहीं भी कर सकेंगे तो भी आपको याद रखते हुए ये सब लोग कार्य करते रहेंगे।

शिवाजी महाराज ने अपने लोगो में इस भावना को निर्माण किया था। इसलिए महाराष्ट्र में एक अपूर्व बात हुई। औरंगजेब इस देश में आया और स्वराज्य को नष्ट करने के लिए औरंगजेब ने २५ साल तक संघर्ष किया। उस समय यहाँ पर राजा कौन था? कोई नही था! संभाजी महाराज मारे गये थे। संभाजी महाराज के बाद महाराष्ट्र का राजा कोई नहीं। और राजा न होने पर भी यह देश लड़ता रहा। एक राजा लड़े, इसमें बढ़ाई नहीं है। लेकिन देश लड़ता रहा, नेतृत्वविहीन देश लड़ता है और राष्ट्र को नष्ट करने आया हुआ औरंगजेब यहाँ पर मरता है और यहाँ पर उसकी कब्र बनती है। औरंगजेब मराठाशाही को नष्ट नहीं कर पाया। क्यों? शिवाजी महाराज ने अपने भीतर की प्रेरणा को विशुद्ध बुद्धि से अनुयायिओं में प्रस्थापित कर दिया था। इस प्रेरणा का दीप आप में भी प्रज्वलित हो इस प्रार्थना के साथ आज इतना ही...

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय प्रवचन

गीता परिवार का संस्कार कार्य जिन मूल आधारों पर निर्भर है, उसका थोड़ासा चिन्तन अपनी समझ को जागृत करने के लिए हम कर रहे हैं। 'ईश्वर निष्ठा' यह हमारा प्राण है, इसका विवेचन हमने देखा और यह भगवद्भक्ति जिन विचारों के आलोक में की जानी चाहिए, वे विचार भगवद्गीता में होने के कारण भगवद्गीता हमारा दूसरा आधार है। भगवद्गीता के अध्ययन की क्षमता किसमें कितनी है यह एक दूसरी बात है, क्योंकि गीता एक अथाह शास्त्र है। अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वानों से मैंने यह सुना है और पाया है कि 'जीवनभर हमने गीता का चिन्तन करने के बाद अब कुछ-कुछ समझ में आने लगी है।' इतनी गहराई जिस शास्त्र की हो वह शास्त्र हम तीन दिन के समय में समझ जाए यह सम्भव नहीं है। किन्तु गीता को पूरा नहीं भी समझ पाते है तो जितना भी समझते हैं उतना ही सही हमारे जीवन में लाने का प्रयास करें तो अपने आप हमारा जीवन अधिक उज्ज्वल होता जायेगा। लेकिन यह प्रक्रिया चलती रहें, इसलिए गीता हमारे साथ होनी चाहिए। मैं गीता से जुड़ा हुआ हूँ, यह मेरी भावना होनी चाहिए। और जब इस भावना के साथ हम गीता का पठन करेंगे, गीता के अर्थ का चिन्तन करेंगे, गीता के बारे में बोलेंगे, इसके बारे में आपस में चर्चा करेंगे, तो गीता हमारे अन्तःस्थल में अधिकाधिक उतरती जायेगी। भगवद्गीता अत्यन्त गहरा ग्रन्थ है। लोकमान्य तिलकजी के 'गीतारहस्य' में पहला वाक्य आता है -

"भगवद्गीता आमच्या सर्व शास्त्रांचा कोहिनूर आहे"

जब उन्होंने भगवद्गीता को कोहिनूर कहा है तो हम कल्पना कर सकते हैं कि भगवद्गीता किस प्रकार का शास्त्र होगा। गीता परिवार के अन्तर्गत अथवा अन्यत्र भी जब कोई लोगों को समझाने के लिए गीता का चिन्तन अथवा गीता का प्रवचन करता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है अथवा आप लोग भी जब संस्कार केन्द्र के बालकों के सामने गीता के बारे में कुछ कहेंगे तो आपको ऐसा मानने की आवश्यकता नहीं कि मैंने गीता को पूरा जाना नहीं है। पहले मैं पूरी गीता को जानुंगी तब उपदेश करूँगी, यह सोचना भी गलत है। मैंने जितना जाना है, उतना ही निरअहंकारी बन लोक कल्याण की भावना से बोलती जाऊँ तो वही भगवद्गीता की भक्ति है। और इस प्रकार आप बालकों के सामनें अथवा अपनें समकक्ष कार्यकर्ताओं के साथ 'भगवद्गीता' की चर्चा करेंगे तो आपको अनुभव होगा कि भगवद्गीता पढ़कर जितनी ध्यान में नहीं आयी उससे अधिक जब मैं बोल रही हूँ तब अपने आप मेरे अन्तःस्थल में उतरती जाती है। इसलिए शिवभागवत् में इस बात को अभ्यास कहा -

"परस्परानुकथनम् पावनम् भगवद् यशः।"

इसलिए आपस में गीता की चर्चा होनी चाहिए, भगवद्गीता को हम अपनाए, उसकी भक्ति स्वयम् को गीता के आधार से ऊँचे ऊँचे स्तरों में ले जायें। गीता की यह श्रद्धा हमारा दूसरा आधार है। पूरी भगवद्गीता का सार केवल दो बातों में आ जाता है। उसमें पहली बात यह है - चाहें जो भी हो जाये, मैं अपने कर्तव्य का त्याग नहीं करूँगा।

मेरा कर्तव्य मुझे करना ही है। भगवान् की यह इच्छा नहीं कि अर्जुन युद्ध करें, लेकिन यदि युद्ध करना अर्जुन का कर्तव्य है तो अर्जुन को युद्ध करना ही चाहिए। भगवान् ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए कहा और इसलिए मैं भी उठकर युद्ध ही करने लग जाऊँ, तो स्पष्ट है मैंने भगवद्गीता को समझा नहीं। भगवान् ने युद्ध शब्द का प्रयोग वहाँ पर किया क्योंकि युद्ध अर्जुन के कर्तव्य में आता है। भगवद्गीता में भगवान् निरन्तर कर्तव्य की ओर हमें उन्मुख करते हैं। चाहे कुछ भी हो जायें, अपने कर्तव्य का त्याग नहीं करो। दूसरी बात कर्तव्य करते समय भी मन का सन्तुलन बना रहे। ये दो बातें आ जायें तो पूरी गीता जीवन में आ जाती है।

भगवद्गीता को योग शब्द बड़ा प्रिय है। पूरी गीता को ही भगवान् ने 'योगशास्त्र' कहा है। भगवद्गीता के हर अध्याय के अन्त में एक पुष्टिका आती है और उस पुष्टिका में भगवद्गीता के सम्बन्धित अध्याय का नाम दिया हुआ होता है। पहले अध्याय का नाम 'अर्जुनविषादयोग' है, दूसरे अध्याय का नाम 'सांख्ययोग' है, तीसरे अध्याय का नाम 'कर्मयोग' है। इस प्रकार नाम बदलते जाते हैं, लेकिन सभी नामों में योग शब्द आता है। तो भगवद्गीता एक योगशास्त्र है और विभिन्न प्रकार के योगों का भगवद्गीता ने उपदेश किया है। इन सभी योगों का मूल आधार कौनसा योग है? तो भगवद्गीताकार स्वयं कहते हैं -

"समत्वं योग उच्यते"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समत्व का अर्थ है 'सन्तुलन'। मैं मेरा सन्तुलन खोऊँगा नहीं। और यदि अपने सन्तुलन को न खोने की कला हम सीख जायें तो अपने आप जीवन में योग आ जाएगा। श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने बडे सुन्दर शब्दों में कहा -

अर्जुना समत्व चित्ताचें। तेंचि सार जाण योगाचें।
जेथे मन आणि बुद्धीचें। ऐक्य आथी।। (२-७३)

चित्त का समत्व ही योग का सार है। सन्तुलन को हम क्यो खो देते हैं? समझो, हमें कहीं सम्मान मिलता है और मैं वहुत वड़ा हूँ, ऐसा अहंकार आ जाता है, तो सन्तुलन गया। कहीं एकाध वार अपयश को पाता हूँ, तुरन्त मेरा सन्तुलन टूट जाता है 'मैं तो जीवन में कुछ नहीं कर पाऊँगा' अतः निराशा आ जाती है। कहीं सुख आया तो सुख में वह गया, दुःख आया तो रोने लग गया। इसलिए भगवान् कहते हैं - ये सुख, दुःख, मान, अपमान, हानियाँ, लाभ - अर्जुन! यह चलता रहेगा, तुम अपने चित्त को सभी अवस्थाओं में सन्तुलित रखना...

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। (२-३८)

चाहे सुख आ जाये, या दुःख आ जाये, चाहे मान या अपमान, लाभ हो या हानि हो जाये, मेरे चित्त का सन्तुलन वना रहे। इस प्रकार की साधना का उपदेश हमे भगवद्गीता से मिलता है।

आप लोगों को क्रिकेट का खेल पता ही होगा। खेले नहीं होंगे तो भी छोटे पर्दे पर तो देखा ही होगा। मैंने वचपन में एक कविता पढ़ी थी - 'जीवन भी एक क्रिकेट का खेल है।' जीवन को क्रिकेट का खेल कैसे कहा? क्रिकेट में क्या होता है? एक वल्लेवाज होता है। उसके हाथ में एक वल्ला होता है। सामने से कोई गेंद फैंकता है। और उस वल्लेवाज को अपने वल्ले से उस गेंद को दूर हटाना होता है। उसको यह चिन्ता होती है कि कहीं यह तीनों यष्टियाँ उड़ नहीं जाये। और यदि तीनों यष्टियों को धक्का लग गया और उनका सन्तुलन चला गया तो वह वाहर हो गया। इसलिए वल्लेवाज उस वल्ले को लेकर खड़ा होता है और गेंद को यष्टियों की ओर नहीं जाने देता, इसी दृष्टि से हमारा जीवन भी 'क्रिकेट' है। हमारे जीवन में यष्टियाँ हैं - हमारा चित्त। सुख की गेंद आकर चित्त के सन्तुलन को विगाड़ती है। दुःख की गेंद आकर चित्त के सन्तुलन को विगाड़ती है। मान, अपमान, लाभ, हानि ये आते ही चित्त का सन्तुलन विगड़ता है। हम लोगों का कर्तव्य क्या है? ऐसी गेंदें तो आती ही रहेंगी। हम लोगों को हाथ में एक वल्ला रखना चाहिए, और इसी वल्ले का नाम है विवेक। विवेक के वल्ले को अपने हाथ में रखते हुए,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनासक्ति की 'बॅट' को अपने हाथ में रखते हुए, आनेवाले सुख-दुःखों की , मान-अपमान की , हानि-लाभ की गेंदो को हम उड़ाते रहें और चित्त के सन्तुलन की यष्टिओं को बचाते रहे, इसी का नाम 'योग' है। यही हमारा जीवन है।

अब भगवान् का यहाँ पर उपदेश क्या हैं? क्रिकेट का खेल चल रहा हो और किसी ने कह दिया कि "भई 'मार्शल' आ रहें हैं, मैं नहीं खेलता हूँ मुझे डर लगता है" तो नहीं चलेगा। अर्जुन भी यही कहता है। वह कहता है कि मैं जा रहा हूँ, मैदान छोड़कर जा रहा हूँ। भगवान् ने अर्जुन को कहा - "मैं तुम्हें बल्ला छोडकर जाने नहीं दूंगा। तुम जीतते हो या हारते हो, इससे कोई बात बनती-बिगडती नहीं। लेकिन तुम बल्ला छोड़कर जा रहे हो, खेल के मैदान से भाग रहे हो यह मैं तुम्हे करने नहीं दूंगा। तुम 'क्लीन बोल्ड' हो जाओं कोई बात नहीं। तुम्हारा 'कॅच' चला जाये और तुम 'आऊट' हो जाओं कोई बात नहीं, लेकिन तुम खेलते रहो। 'बॅट' तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए।" उसी प्रकार चाहे जो भी हो जाये मैं अपने जीवन में कर्तव्य के मैदान में डटा रहूँ। जब तक हूँ अपने कर्तव्य का पालन करता रहूँ। यदि यह काम मेरा है तो यह काम मुझे करना ही चाहिए। इस प्रकार की भावना मेरे अन्तर्मन में निरन्तर जागृत होनी चाहिए। यदि ऐसा होगा तो फिर भगवद्गीता में भगवान् कहतें हैं, तुम 'आऊट' भी हो गये तो भी तुम जीत गये। लेकिन यदि तुमने बल्ला फेंक दिया तो तुम उसी समय हार गये। कर्तव्य का त्याग करतें ही मनुष्य भगवान् की दृष्टि में गिर जाता है। और यदि कर्तव्य का पालन करता रहा और उसकी हार भी हुई तो भी भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा अपयश भविष्य में यश प्राप्त करने के लिए उपयुक्त सिद्ध करूंगा। तुम हँसते हुए मनोधैर्य से खेलते रहे यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। हम जीवन की ओर किस दृष्टिकोण से देखते हैं, हमारी मनोवृत्ति क्या है? हमारा यह दृष्टिकोण एक मात्र ऐसी बात है जिसका विचार भगवान् पग-पग पर करते हैं। इसलिए भगवान् ने यश को इतना महत्त्व नहीं दिया है जितना कर्तव्य को।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। (२-३८)

भगवान् यहाँ पर दो शब्दों का प्रयोग करते हैं - 'जय' और 'अजय'। तुम पराजित हो जाओं कोई बात नहीं, लेकिन तुम भाग जाओं यह कदापि मान्य नहीं। तुम्हें मैं भागने नहीं दूँगा। यदि आप अपने कर्तव्य पर डटें रहते है और अपने मन का सन्तुलन कायम रखते हैं तो आप एक बात जीवन में देखेंगे कि आप जहाँ भी जाएंगे यश के द्वार आपके लिए खुलते रहेंगे क्योंकि यह बहुत बड़ा विज्ञान है। कर्तव्य के लिए जब हम निश्चय के साथ खड़े हो जातें हैं, तो बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन की एक घटना है - एक बार वे एक पर्वत से जा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहे थे और एकाएक, सामने से एक शेर आया। अब भागने को भी स्थान नहीं थी। वे सोचते रहे कि मैं करूँ तो क्या करूँ? अब इधर खाई है, उधर पर्वत है। खाई में कूदना कठिन है पर्वत पर चढना भी कठिन है। और पीछे भाग जाँऊ तो शेर मेरा पीछा करके मुझे समाप्त कर सकता है। क्या करें? स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा और कोई उपाय नहीं है यह देखकर मैं वहाँ पर बैठ गया। शान्ति के साथ भगवान् का मैंने स्मरण किया। शेर मेरे पास आया और मेरे ऊपर से कूदकर अपने मार्ग से चला गया।" जीवन में कठिन परिस्थितियाँ आने पर भागना नहीं है, जो जीवन में रणांगण छोड़कर दूर नहीं जाता है, उसे सफलता अपने आप प्राप्त होती है। परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने का मार्ग अपने आप प्राप्त होता है। और एक दिन संसार आपको सफल घोषित करता है। इसलिए हम अपने कर्तव्य का त्याग न करें और कभी कर्तव्य का अहंकार न करें। ऐसा करने से ही जीवन एक आनन्द यात्रा वन जाती है। जीवन में बोझ नहीं रहता है। जब मैं अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ और सन्तुलन खोता नहीं हूँ, तो मुझसे किसी को दुःख भी नहीं पहुँचता।

लोगों की ओर देखने के बजाय हम अपने ही चित्त की ओर देखें। और जिस समय हमें ऐसा लगता है कि मेरे चित्त का सन्तुलन जा रहा है, हमें अपने मस्तिष्क का पुनर्योजन करना चाहिए। मस्तिष्क की विचार धारा को बदल देना चाहिए। और यदि इस कला को हम सीख जायेंगे तो अपने आप हम 'योगी' हो जायेंगे। भगवद्गीता में योगासन करने को योग नहीं कहा, प्राणायाम् करने को योग नहीं कहा, चित्त के सन्तुलन को बनाए रखने की कला को योग कहा है। इसलिए ईश्वर भक्ति के साथ-साथ भगवद्गीता का चिन्तन हमारे मन में चलता रहे, तो संस्कारों का यह कार्य, अपने व्यवसाय का कार्य, अथवा समाज सेवा का कार्य, यह सभी कार्य हमारे लिए बोझ नहीं रह जाते। यह सब कार्य करते हुए भी हम हँसते रहते हैं, मुस्कुराते रहते हैं। क्या यह सम्भव है? अवश्यमेव सम्भव है। लेकिन उसके लिए पहले हम लोगों को कुछ प्रशिक्षण लेना चाहिए। इतने सारे काम करके भी चित्त का सन्तुलन कैसा रखा जा सकता है, इसकी शिक्षा आवश्यक है।

आप लोग साईकल चलाते होगें। जब आरम्भ में साईकल चलाना सीखते हैं तब हैंडल और पेडल का सन्तुलन रखना कठिन होता है, और हम गिरते है। लेकिन वही व्यक्ति जब एक बार उस कला को सीख लेता है कि साईकल को कैसे चलाया जाय- उसके पश्चात् तो क्या कहे वह केवल साईकल चलाता नही हैं, कभी एक हाथ छोडकर चलाता है, कभी दोनों हाथ छोडकर चलाता है। पुणे में तो एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर चलाते हैं, और कोई गाड़ी जा रही होगी तो, गाड़ी को पकडकर भी कई लोग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलाते हैं। पेडल मारना ही नहीं पड़ता - अपने आप चलती है साईकल, और चलानेवाला उससे आनन्द लेता है। लेकिन यही व्यक्ति जब आरम्भ में सीख रहा था, तब क्या हो रहा था? कभी नीचे ध्यान जाता था। तो ऊपर नहीं जाता, और ऊपर ध्यान जाता था, तो नीचे नहीं जाता था। तो जिस प्रकार साईकल चलाना उसके लिए अब, सरल हो गया उसी प्रकार हमारे चित्त का सन्तुलन रखना भी हमारे लिए बड़ा सरल हो सकता है। केवल हम लोगों को जरा सा सीख लेना चाहिए। हम लोगों को समझ लेना चाहिए। और भगवद्गीता में इसके उपाय हम लोगों को प्राप्त होते हैं। तो भगवद्गीता को किसी एक अपने कार्य के लिए नहीं, पूरे जीवन के लिए अपनाइयेगा। विनोबाजी का वाक्य मुझे याद आता है -

"गीताई माऊली माझी, तिचा मी बाळ नेणता, पडता रडता घेई, उचलूनी कडेवरी।"

जिस प्रकार एक माता बालक को उठा लेती है, और रोता हुआ बालक जब माता की गोद में बैठता है तो शान्त हो जाता है। क्योंकि माँ को पता है उसका मन कैसे बहलाया जाये, कैसे उसे लड्डू दिखाया जाये, कैसे उसे गुड़िया दिखायी जाये और फिर वह उसको हँसा देती है। उसी प्रकार भगवद्गीता को माता की तरह मान कर जब हम उसकी उपासना करेंगे, तो अपने आप इस प्रकार आनन्दी जीवन जीने की एक सुन्दर-दिव्य दृष्टि हम लोगों को प्राप्त हो जायेगी।

यह अत्यन्त श्रेष्ठ शास्त्र है। भगवान् कहते है 'अर्जुन!" इस शास्त्र में मैनें भक्तियोग कहा।' लेकिन तुम्हे पता है, इस शास्त्र में भगवान् को कौनसा भक्त सबसे प्रिय है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। (१८-६८)
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। (१८-६९)

भगवान् कहते है, "हे अर्जुन! मुझे वह भक्त सबसे प्रिय है जो मेरी गीता लोगों को सुनाता या पढ़ाता है।" आप लोग, गीता के, गीता परिवार के अथवा संस्कार कार्य के अन्तर्गत जब बालकों को थोड़ी-थोड़ी गीता पढ़ाना आरम्भ करते हैं - तब आप लोगों को यह भी समझ लेना चाहिए कि मैं भगवान् कृष्ण की अत्यन्त श्रेष्ठ भक्ति कर रही हूँ। इस प्रकार की भक्ति ऐसी भक्ति है जिसके कारण मैं श्रीकृष्ण की प्रिय हो जाऊँगी। भगवान् के प्रिय होने का उपाय, भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं -

"भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।"

अर्थात एक तो वह भक्त है जो मूर्ति की पूजा कर रहा है, एक वह भक्त है जो माला

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेकर फेरता है। एक वह भक्त है जो स्थान-स्थान पर वालकों को गीता पढ़ाता है, गीता के सम्पर्क में लाता है भगवद्गीता के अन्तर्गत स्वयं भगवान् के वाक्य है कि मुझे इन सब भक्तों में वह भक्त अधिक प्रिय है जो लोगों को गीता पढ़ाता है। आपको माला फेरने की या पूजा करने की आवश्यकता नहीं। यदि आप यह करते हैं तो भलेही करें उसे त्यागे नहीं, नहीं तो आप घर पर जाकर वोलोगी? कि "महाराजजी ने हमें ऐसा कहा।" मेरा मतलव यह है कि जिस प्रकार आप उन वातों को करतें हैं, उसी प्रकार आप भगवद्गीता पढ़ाने का भी उपक्रम आरम्भ कीजिएगा। कोई भी व्यक्ति २४ घण्टोतक पूजा नहीं कर सकता। हमें भगवान् की आराधना के भिन्न-भिन्न विकल्प ज्ञात होने चाहिए। ये प्रभु को प्रसन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न पहलू हैं।

मैं जव किसी को भगवद्गीता पढ़ाती हूँ या मैं गीता के वारे में वोलती हूँ, तो अन्तःकरण में यह भावना होनी चाहिए कि मैं कृष्ण की आराधना कर रही हूँ क्योंकि यह गीता कृष्ण की गीता है। मैं गीता के बारे में जव लोगों के अन्तःकरण में भावना जागृत करती हूँ या गीता के ज्ञान का संक्रमण करने का प्रयास करती हूँ तो मैं कृष्ण के अधिक समीप पहुँचती हूँ। मैं कृष्ण के समीप जाना चाहूँ या न चाहूँ, लेकिन मैं रात-दिन गीता की वात करती रहूँ, तो यह पक्की वात है कि भगवान् कृष्ण स्वयं आपके समीप आकर खड़े हो जायेंगे। कृष्ण का यह स्वभाव हैं। पुण्डरीक कहीं नही गया। हम लोग द्वारिका जाते हैं, वद्रीनाथजी जाते हैं वृन्दावन जातें हैं, जीवन भर कहीं न कहीं जाते ही रहते हैं।

पुण्डरीक कहीं नहीं गया, लेकिन पुण्डरीक ने अपने माता-पिता की सेवा को अपना सव कुछ माना और माता-पिता की सेवा करता रहा। फिर एक दिन भगवान् स्वयं पुण्डरीक के घर पहुँचे...

"पुण्डलिका भेटी परव्रह्म आले गा।"

हम लोग भगवान् के पीछे-पीछे दौड़ते हैं और भगवान् स्वयं पुण्डरीक से मिलने आते है। और पुण्डरीक भी कैसा फक्कड़! भगवान् आकर वाहर खड़े हैं दस्तक दे रहें हैं। पुण्डरीक ने पूछा, "कौन है जी?" भगवान् ने कहा कि "मैं द्वारिकाधीश हूँ, तुमसे मिलने के लिए आया हूँ।" "ओहो! वडी अच्छी वात है! लेकिन यह मेरे माता-पिता की सेवा का समय है। आप जरा खड़े ही रहेंगे तो अच्छा होगा। मैं अभी तो नहीं आ सकता।" भगवान् ने कहा "वरसात के कारण चारों ओर कीचड़ है।" पुण्डरीक ने कहा, "मैं माता-पिता की सेवा में तल्लीन हूँ, इस समय मैं अधिक वात भी नहीं कर सकता। आप पहले ही वता कर आते और मैं आपसे नहीं मिलता तव तो मेरा दोप भी कहा जा सकता था। आप ऐसे ही चले आये, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ? आपके लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ईंट मेरे पास है। आपको समय हो तो खड़े रहियेगा।" और आश्चर्य की बात, स्वयं भगवान् पुण्डरीक की प्रतीक्षा करते हुए -

"विटेवरी ऊभा कटेवरी हात काय मौजेचा पंढरीनाथ।"

ईंट पर भगवान् खड़े हो गये। आज भी भगवान् पंढरपूर में पुण्डरीक की प्रतीक्षा करते हुए खड़े है। आप सोचते होंगे क्या यह हो सकता है? हाँ, पूरे शास्त्र इसके प्रमाण है। भगवान् ने श्रीमद्भागवत् में भी यही कहा - "अरें उद्धव! मैं उसके पीछे-पीछे घूमता हूँ।"

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूययेत्यङ्घ्रिरेणुभिः। (११-१४-१६)

लोग मेरे चरण की धूल लेने के लिए लालायित होते रहतें हैं लेकिन मैं उस भक्त के पीछे-पीछे दौड़ता रहता हूँ कि उसके चरण की धूली मुझे प्राप्त हो" जो पुण्डरिक जैसे हैं। मनुष्य अपनी साधना के साथ इतना एकाकार हो जाये, मनुष्य अपनी साधना में इतना एकाग्र हो जाये, तो अपने आप उसे साध्य प्राप्त होता है। इसलिए हम जब संस्कार कार्य का यह काम करते हैं, नन्हें-मुन्हें बालकों को बालकृष्ण के रूप मानकर उनकी आराधना करते हैं, उन्हें कुछ बातें सिखातें हैं, तो एक न एक दिन ऐसा आयेगा कि भगवान् श्रीकृष्ण आपके जीवन में पधारेंगे।

सेवा के अनेक आयाम है। आधुनिक युग में यदि इस प्रकार की साधना का उपक्रम लोगों को दिया जाये तो इसमें दो प्रकार की बातें अपने आप होती है - समाज का भी काम होगा और अपनी भी साधना होगी।

लोकमन संस्कार करना यह परमगति साधना है।
और रचना गौण है सब यह शिखर संयोजना है।।

इस प्रकार का संस्कार कार्य यह सर्वश्रेष्ठ साधना है। अपने जीवन में इस साधना का प्रारम्भ हो इस प्रार्थना के साथ आज इतना ही....

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थ प्रवचन

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

प्रातःस्मरण में हम अयोध्या और मथुरा का नाम लेते हैं, माया याने हरिद्वार का नाम लेते हैं, काशी, कांची, जगन्नाथ पूरी का नाम लेते है - पूर्व से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारतभूमि का स्मरण इस श्लोक में आता है। हमारे शास्त्रकारों ने हम लोगों को यह बात सिखाई है, सांस्कृतिक परम्परा में यह बात आयी है कि हमारे मन में निरन्तर पूरी भारतमाता का चिन्तन चलता रहें।

"दुर्लभम् भारते जन्म।"

भारत में जन्म मिलना यह बडे भाग्य की बात है। हमारे शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक कहा कि -

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागाः।।"

स्वर्ग में देवताएँ भी उन लोगों का गौरव गान करते हैं कि, "वाह! वे लोग धन्य हैं जिनका भारत में जन्म हुआ। क्या हम लोगों को कभी ऐसा लगा कि मैं कितना धन्य हूँ जो भारत में मेरा जन्म हुआ? लगता है, अच्छा होता यदि मैं कैनडा में जन्म लेता! यदि मैं अमेरिका में जन्म लेता! और यदि वहाँ की 'सीटीझनशिप' मिल जाये, ओहो! और क्या चाहिए! यदि ऐसा लगता हो तो यह हमारी अश्रद्धा का, हमारे अज्ञान का यह परिणाम है। हमारे देश की महत्ता को न जानने का यह परिणाम है। निरन्तर अपने अन्तःकरण में इस भारतमाता का चिन्तन हम करते रहें।

भारतमाता का चिन्तन करते समय फिर मैं अपनी जाति का, अपने प्रान्त का, गाँव का अथवा अपने परिवार का भी चिन्तन करता हूँ, तो यह गलत नहीं है। लेकिन सर्वदा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक बात देखना आवश्यक है कि मैं जो काम मेरी जाति के लिए कर रहा हूँ वह काम भारतमाता की सेवा के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। मैं जो काम अपने प्रान्त के लिए कर रहा हूँ, वह काम भी, भारतमाता की ही सेवा का काम है। मैं यदि मेरी भाषा का भी काम करता हूँ, तो भी वह भाषा का काम भारतमाता के ही विकास का काम है। इस प्रकार मैं अपनी क्षमता के अनुसार कहीं पर भी काम करूँ, कितना भी छोटा काम करूँ, लेकिन वह काम इस भारतमाता की सेवा के अनुकूल हो यही हमारा उद्देश्य रहे।

पूरे भारत के उत्कर्ष का हम लोगों को चिन्तन करते रहना चाहिए। इसलिए और एक बात हम लोगों के ध्यान में आनी चाहिए कि हम अन्तःकरण पूर्वक इस बात को कहे कि भारत में जन्मा हुआ हर व्यक्ति मेरा बन्धु है। स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे- "भारत में जन्मा हुआ कुत्ता भी आपको अपना लगना चाहिए।" यह बहुत बड़ी बात है। भारत में जन्मा हुआ कोई भी हो, किसी भी धर्म का हो, किसी भी जाँति का हो, लेकिन वह मेरा है। यदि वह इस देश की परम्परा के विरुद्ध काम करता है तो उसको सजा भी करनी पड़ेगी। लेकिन यदि वह इस देश की परम्परा के अनुकूल है तो वह कोई भी हो, वह मेरा है। इस प्रकार का एक बन्धुभाव का जागरण हमें अपने भारतीय बन्धुओं के लिए करना चाहिए। यह राष्ट्रवाद ही भारत भूमि की सेवा है। इसे हमारी आराधना में, हम अन्तर्भूत करते हैं।

अन्य देश की सेवा, अन्य भूमियों की सेवा, और भारतमाता की सेवा, इनमें एक अन्तर अवश्य है। उस अन्तर को थोड़ा सा ध्यान में लेना बहुत आवश्यक है। भारत का राष्ट्रवाद कभी किसी अन्य राष्ट्र के ऊपर आक्रमण करने के लिए संवर्धित नहीं हुआ है।

जब हिटलर के अन्तःकरण में जर्मनी को बड़ा करने का भाव जागृत हुआ तब हिटलर ने आक्रमण करना आरम्भ किया। जर्मनी को हिटलर ने अत्यन्त बलसम्पन्न बनाया लेकिन उसका परिणाम यह हुआ कि जर्मन लोगों ने अन्यों पर आक्रमण किए और अन्यों को दुःखी बनाया। लेकिन भारत भूमि का कोई भी नागरिक इस बात को सोच भी नहीं सकता। भारत भूमि में सर्वदा यही हुआ कि जब-जब भारतीय प्रबल रहें, उन्होंने अन्यों पर आक्रमण नहीं किया। यदि हम लोगों ने कहीं पर भी जाकर कोई प्रचार किया तो अपने चरित्र के बल पर किया, ज्ञान के बल पर किया, प्रेम के बल पर किया, शस्त्रों के बल पर नहीं। यही इस देश की भूमि का स्वभाव है। इसलिए अन्य देशों का राष्ट्रवाद और भारत का राष्ट्रवाद, इसमें एक मौलिक अन्तर है। इस अन्तर को हम भूले नहीं। इसलिए भारतमाता की आराधना अथवा भारतीय राष्ट्र को बल सम्पन्न बनाने की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधना, यह देश की सेवा का ही काम नहीं, यह धर्म का भी काम है। यह आध्यात्मिक साधना है। इस विषय में आप अधिक पढ़ना चाहे तो आप योगी अरविन्द के ग्रन्थों को पढ़ें। वे सर्वदा कहते थे - भारत भूमि का भविष्य उज्ज्वल है और भारत के समृद्ध बनने में, भारत के बलवान बनने में, अन्य देशों का भी हित है क्योंकि हमने कभी किसी को कुचला नहीं, किसी के ऊपर आक्रमण नहीं किया। प्रत्युत अपने बल का उपयोग दूसरों को उन्नत करने में किया।

आपको पता होगा कि लगभग हमारे देश के साथ-साथ ही इस्रायल स्वतन्त्र हुआ। इस्रायल ज्यू लोगों का छोटासा राष्ट्र है। स्वतन्त्रता मिली तब वहाँ पर रहने वाले ज्यू लोगों की संख्या बहुत कम थी। २००० वर्षों के पारतन्त्र्य के बाद इस्रायल की भूमि स्वतन्त्र हुई। तो उन्होने लोगों से आवाहन किया कि आप यहाँ रहने के लिए आइयें। तब ये ज्यू लोग, पूरे संसार में बिखरे हुए थे। ऐसी अवस्था में, स्वतन्त्रता के बाद आवाहन किया गया तो लोग वहाँ पहुँचने लगे। अपने भारत देश से भी अनेक सम्पन्न ज्यू परिवार अपनी सम्पत्ति को बेचकर, यहाँ से वहाँ जाकर बसे। वहाँ पर भिन्न-भिन्न देशों से आए हुए लोगों ने अपने-अपने बयान दिये, आपको आश्चर्य होना चाहिए, सभी देशों में ज्यू लोगों को बहुत कष्ट सहने पड़े। उन लोगों ने जो बयान दिये उसमें उन्होंने कहा कि इस देश में हमें यह कष्ट मिला, उस देश में हमें यह सहना पड़ा। सभी देशों में उनको कोई न कोई हानि उठानी पड़ी, कोई न कोई कष्ट भोगना पड़ा। लोगों ने उनको अलग मानकर या तो उनके धर्म का नाश करने का प्रयास किया या तो उनको किसी न किसी प्रकार से सताया। एक पुस्तक में उन्होंने लिखा है - 'केवल भारत एक मात्र अपवाद है।'

केवल भारत एक मात्र ऐसा देश था कि, यहाँ से जानेवाले ज्यू लोगों ने कहा, 'हमें भारतवासियों ने बिल्कुल नहीं सताया। हम स्वतन्त्रता से अपने धर्म का पालन वहाँ पर भी कर रहे थे। भारतीय निवासियों ने, भारतीय परम्परा ने, कभी किसी की आराधना पद्धति को कुचलने का प्रयास नहीं किया। हम लोगों का भाव यह रहा कि सभी प्रकार की साधना एक ही परमात्मा तक पहुँचाती है। जिस भाव का प्राकट्य स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने शिकागों के भाषण में किया। उन्होंने कहा 'कोई परमात्मा की आराधना किसी भी नाम से करता हो, किसी भी रूप में करता हो, किसी भी पद्धति से करता हो, उससे क्या? भिन्न-भिन्न नामों से, भिन्न-भिन्न रूपों से, भिन्न-भिन्न पद्धतियों से, आराधना करके, अन्तिमतः पहुँचना होता है एक परमात्म तत्त्व पर्यंत! जिस प्रकार आकाश से बरसा हुआ जल, भिन्न-भिन्न मार्गों से सागर में जाकर मिलता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारों से की आराधना से एक ही परमात्मा की प्राप्ति होती है।' हम लोग उस श्लोक को जानते हैं -

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।।

इसलिए हमारे इस भूमि पर, इस प्रकार की असहिष्णुता का कार्य कभी नहीं हुआ। हमारे भूमि की यह विशेषता है कि सभी साधनाओं को, सभी आराधनाओं को समान मानना चाहिए, यह हमें सीखना नहीं पड़ता है। हमारे एक घर में, एक ही परिवार में, कितनी सारी देवताएँ होती हैं। पिताजी शिवजी की आराधना करते हैं, सोमवार का उपवास रखते है। माँ कृष्ण भगवान् की पूजा करती है, एकादशी का उपवास करती है। बड़ा बेटा गणेशजी की पूजा करता है, चतुर्थी का उपवास करता है तो छोटा बेटा तो बस, खाली बजरंगवली "और देवता चित्त न धरहीं, हनुमत सेई सर्व सुख करहीं।" को ही मानता है। अब नई वहू आयी है, और उसने अपने साथ संतोषी माँता की तसवीर लायी है। कितने आश्चर्य की वात है? यह चमत्कार कोई अन्य भूमि पर हो नहीं सकता। एक वाहरी देवता हमारे घर के अन्दर कैसे आ सकती है? सवने विरोध किया होता! लेकिन यहाँ पर देखो, लोग कैसे हैं अव वो आयी है कोई वात नहीं, उन्होने तुरन्त उस माता की प्रतिष्ठापना की। पोथी बन गयी। शुक्रवार का उपवास किया। यह एक ऐसा आश्चर्य है जो केवल भारत की भूमि पर ही हो सकता है। यह सहिष्णुता संसार में आपको कहीं पर भी देखने को नहीं मिलेगी।

जरा सा विदेशों का दौरा करके आप आइएगा, जरा सा विदेशी साहित्य आप पढ़िएगा। आपको आश्चर्य होगा कि जितना स्वातन्त्र्य भारत में है उतना स्वातन्त्र्य संसार में कहीं पर भी नहीं। भारतमाता ने कितनी श्रेष्ठ परम्परा हमें दे दी। इस भारतमाता की आराधना हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग हो जानी चाहिए। क्योंकि हम कृतज्ञ हैं। और कृतज्ञता मानव जीवन का अलंकार है। मनुष्य से पहली अपेक्षा यह होती है कि, किए हुए उपकारों को वह भूलें नहीं। मैंने इस भूमि का जल पिया, मैंने यहाँ का अन्न खाया, मेरी बुद्धि का विकास यहाँ हुआ, यहाँ के विचारों को लेकर मेरा विकास हुआ, इस भाव से मैं ऋणमुक्त कैसे हो सकता हूँ? शास्त्रकारों ने कहा, आपके ऊपर ऋण है और आपको इस ऋण को चुकाना चाहिए। और इस ऋण को चुकाने के लिए हमारे कार्य में भारतमाता की आराधना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है। हम भारतमाता को भूले भारतमाता के सुख के साथ हमारा सुख जुड़ जाये। भारतमाता की आपत्ति में हम दुःखी हो जाये और भारतमाता की सेवा हमारे जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य रहे, जीवन का एक सूत्र बन जाये -

'भारतमाता की जय।' भारतमाता की जय का अर्थ क्या होता है? अन्यान्य अर्थ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आप लोग जानते हैं। मेरी दृष्टि में एक ही अर्थ होता है। मेरे मन में एक विचार आया, जिसमें भारत का कल्याण है, भारतमाता का गौरव बढ़ानेवाला यह विचार है। साथ साथ दूसरा एक विचार आया जो स्वार्थ का है। अब यह संघर्ष मन में चलता है - एक देश हित का विचार और एक मेरे स्वार्थ का विचार। ऐसे समय में मेरे अन्तःकरण से एक घोषणा, एक नारा, आना चाहिए - "भारतमाता की जय।" मेरे विचार का पराजय हो जाये और भारतमाता के विचार की जय हो जाये। सर्वदा व्यक्तिगत विचार और देश हित के विचार में संघर्ष होता है। ऐसी बेला में भारत के हित का विचार पहले करूँ, यह भाव हमें अपने बालकों में जगाना आवश्यक है। शिवाजी महाराज ने यह भाव जगाया, महाराणा प्रताप ने यह भाव जगाया, स्वामी विवेकानन्दजी ने यह भाव जगाया।

स्वामी विवेकानन्दजी तो कहा करते थे - "मेरे देश वासियों को, मेरे देश के नौजवानों को मुझे एक ही बात कहनी है। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग पुराने देवी-देवताओं को भूल जाए और हमारे सामने आनेवाले पचास वर्षों में एक मात्र देवता खड़ी हो जाये - 'भारतमाता।' इस भारतमाता के साथ हम अपने चित्त को जोड़ ले। इस भारतमाता में जन्मा हुआ हर व्यक्ति मेरा बन्धु है। मैं उसके लिए कुछ करूँ। इस भारतमाता की सेवा का व्रत लेकर मैं अपने जीवन को उस पर समर्पित कर दूँ।" इस प्रकार की एक विलक्षण देवता उन्होंने हमारे सामने खड़ी कर दी। और इसलिए 'भारतमाता' हमारी प्राण प्रिय देवता हो जानी चाहिए।

हम जब जब बालकों के सामने कोई भी बात रखें तो भारतमाता की सेवा के बारे में ही वह बात होनी चाहिए। भारतमाता की सेवा करने का कोई न कोई संकेत उस बात में आना चाहिए।

भगवान् श्रीराम लंका का युद्ध जीत गये, और प्रभु को याद आने लगी - अयोध्या की। अयोध्या की जब याद आने लगी तो लक्ष्मण के साथ विभीषण ने समाचार भेजे। समाचार भेजने का कारण यह था कि भगवान् किसी भी शहर में चौदह वर्षों तक गए नहीं, वे लंका के बाहर ही रहें। विभीषण का राज्याभिषेक करने के लिए भी लक्ष्मण गये थे। लक्ष्मण ने आकर भगवान् से कहा कि महाराज विभीषण, जिनका अभी-अभी राज्याभिषेक सम्पन्न करके मैं आया हूँ, उन्होंने आपके लिए समाचार दिया है कि, आपको अयोध्या से निकले, चौदह वर्ष हो गये हैं। अब आप लौटकर क्या करेंगे? सोने की लंका का आपकी कृपा से मैं राजा बना हूँ। राज्य आप का ही है, आप यहीं पर आराम से निवास कीजिएगा। भगवान् श्रीराम के स्थान पर दूसरा कोई होता तो कहता, अच्छी बात है भाई! आराम है यहाँ पर! मै यही रहूँगा। एकाध बार अयोध्या जाकर आ जाऊँगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेकिन रामकथा में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। प्रभु ने कहा, लक्ष्मण तुम कैसे पूछते हो कि अयोध्या में क्या है? सोने की लंका को देखकर यहाँ पर रहने का मोह मेरे मन को हो नहीं सकता। सामने कोई स्वर्ग का साम्राज्य भी रख दे तो भी उससे अधिक प्यारी मुझे मेरी अयोध्या की भूमि है। भगवान् स्वयं बोल उठे -

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

अत्यन्त आदर का और भक्ति का यह जो भाव भूमि के प्रति प्रभु के अन्तःकरण में है वह भाव अपने अन्तःकरण में हमें भी निर्माण करना चाहिए। हम जिन वालकों के साथ सम्पर्क में आ जाये, उन वालकों के अन्तःकरण में भी इस भाव को निर्माण करने का निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

सोने की लंका न मिले माँ, अवधपुरी की धूल मिले।
सोने में कांटें चुभते हैं, मिट्टी में है फूल खिले।।

सावरकरजी की जीवनी याद आती है। बैरिस्टर वन चुके थे। अपने जीवन में 'करिअर' को कितना सुन्दर वना सकते थे। कितनी सम्पन्नता प्राप्त कर सकते थे। लेकिन मेरी माता जव परतन्त्र है, तो ऐसी अवस्था में मुझे केवल सुख का उपभोग करने के लिए किसी का दास नहीं होना चाहिए यह भावना उनमें ओत-प्रोत थी।

"मातृभूमि को स्वतन्त्र करने के लिए सशस्त्र
क्रान्ति का सेतु खड़ा करके लडते हुए प्राणार्पण करूंगा"

इस प्रकार की जगदम्वा के सामने आयु के सोलहवें वर्ष प्रतिज्ञा करने वाला, वह छोटा विनायक, बैरिस्टर वनने के पश्चात् यही कहता है कि मुझे मेरे भारत की याद आती है। विदेशों में बड़ी से बड़ी उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वे रोते हुए कहते हैं कि मैं कहाँ वैठा हूँ? मुझे भारत में जाना है। मुझे भारत का उत्थान करना है। मैंने अपने जीवन में जो-जो सद्गुण प्राप्त किए है, केवल इसलिए किए है कि इन सद्गुणों को मैं भारतमाता की सेवा में अर्पित करूँ और मेरी माता का उद्धार हो जाये। यदि मैंने अपने जीवन के सद्गुणों का उपयोग कर भारतमाता की सेवा नहीं की तो मेरे सद्गुणों का भी धिक्कार है। उनका उपयोग क्या? संसार में अनेक सम्पन्न देश है, होंगे। दूसरों की माँ सम्पन्न है, इसलिए हम खुश नहीं होते वह मेरी माँ तो नहीं हो सकती। मेरी ही माँ, मेरी माँ है।

जव तक राष्ट्रभक्त के जीवन में अपने मातृभूमि के लिए इस प्रकार की सम्पूर्ण समर्पण की भावना निर्माण नहीं होती तव तक जीवन में उज्ज्वलता नहीं आती। जीवन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को महान बनाना है तो जीवन को किसी महान लक्ष्य के साथ जोड़ दीजिएगा। एक छोटा-सा लोहे का टुकड़ा कील बन जाता है तो जूते के साथ जुड़ जाता हैं, और वही लोहे का टुकड़ा कहीं 'वॉल बेअरिंग' बन जाता है या पेंच बन जाता है और घड़ी में काम आ जाता है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। और वही लोहे का टुकड़ा यदि कोई उपकरण बनकर संगणक में काम आ जाता है तो उसका मूल्य और अधिक बढ़ जाता है। लोहे का वही टुकड़ा है, लेकिन वह जिसके साथ जुड़ा उसके साथ उसका मूल्यांकन होता जाता है। हमारा जीवन भी इसी प्रकार एक छोटा सा जीवन है। हम उस जीवन को किसके साथ जोड़ते हैं, इस बात को सोचिएगा। यदि मैंने उस जीवन को छिछली बातों के साथ जोड़ा तो वह जीवन क्षुद्र किडे-मकोडों के समान होगा।

शेणामाजी बांधूनि वाडे-नांदति शेणकिडे

सावरकरजी ने कहा गोबर सूख जाये तो उसमें कीड़े बन जाते हैं, और कीड़े कहते हैं वाह! कैसा सुन्दर मेरा घर! मेरा बंगला! अगर हमारी भी दृष्टि जीवन के प्रति इतनी ही संकुचित हो तो हमारे जीवन में और उन जन्तुओं के जीवन में बहुत अन्तर नहीं है। केवल खाओ-पीओ मौज मनाओं, टी. व्ही. देखो, सोफ़े पर बैठो और पलंग पर लेटों, इसी प्रकार का जीवन यदि हम लोगों को जीना हो तो पशुओं का जीवन और हमारे जीवन में क्या अन्तर रह जाता है? इस मानव जीवन का क्या लाभ है? मानव की यह विशेषता है कि मानव अपने विवेक को जागृत करके महान् कार्य के साथ जुड़ सकता है। और जो जितने महान् कार्य के साथ जुड़ेगा, अपने आप वह उतना ही महान् कहलाएगा।

महात्मा गांधीजी शरीर से कोई हम लोगों से बड़े नहीं थे। मुझे तो ऐसे लगता है कि गांधीजी से हम लोगों का दुगुना वजन होगा, दुगुना नहीं होगा तो कमसे कम डेढ़ गुणा तो अवश्य ही होगा। डॉ. आईनस्टाइन ने गांधीजी का वर्णन किया - "मुठ्ठी भर हड्डियों का आदमी।" लेकिन मुठ्ठी भर हड्डियों के उस नर ने संसार को हिला दिया। मैं विदेश में एक पुस्तकालय में गया। पुस्तकें देख रहा था। एक अमेरिकन लड़की वहाँ पर आयी। मेरा ऐसा वेष देखकर, उसने पूछा, 'Are you Indian" मैंने कहा - 'जी हाँ!' उसने कहाँ, 'Can you tell me something about Gandhi" मुझे बड़ा अच्छा लगा। उसने मुझे गांधीजी के बारे में पूछा। मैंने पूछा, "भारत के बारे में आपने और कुछ पढ़ा है?" उसने कहा, "मैंने पढ़ा बहुत कुछ है लेकिन मुझे गांधीजी के बारे में जो पढ़ा वह बहुत अच्छा लगा।" मैं भी खुश हुआ। मैंने उससे पूछा "तुम्हें गांधीजी क्यों अच्छे लगते हैं?" बातचीत चली। सारांश यह कि आदमी छोटा सा था लेकिन उसके भीतर की ज्वाला बहुत बड़ी थी। और उस ज्वाला ने उसको एक महान ध्येय के साथ एकाकार कर दिया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक मूठ्ठी भर हड्डियों का वह आदमी पूरे संसार का एक अजेय योद्धा वन गया। शायद हम गांधीजी नहीं वन सकेंगे, हम विवेकानन्द नहीं वन सकेंगे, लेकिन हम कुछ तो वन सकते हैं।

हमने कुछ वनने का प्रयास किया है क्या? या जैसे जन्मे वैसे ही मरने का निश्चय करके हम आये! संस्कार साधना एक ऐसी साधना है जो आपको एक महान ध्येय के साथ जोड़ने का प्रयास करती है। और अव अपने सामने जिसने महान ध्येय रखा, मान लो एकाध वार वह असफल होगा। उसकी असफलता का विचार संसार नहीं करता है। गुरु गोविन्दसिंह सफल नहीं हुए, राणाप्रताप सफल नहीं हुए, लेकिन संसार ने उन्हें महान माना। क्योंकि एक वहुत वड़ा सिद्धान्त है - जो महान कार्य से जुड़ जाते हैं उनकी असफलता भी सफलता ही होती है। क्या हमने अपने जीवन में इस वात को कभी सोचा? अपना परिवार, अपनी गृहस्थी अवश्य सम्भालो लेकिन केवल उतना ही नहीं करो। उसके साथ-साथ और भी कुछ सोचना शुरू करो वह सोचना भी भारतमाता के वारे में होना चाहिए। अपने घर में चर्चा हो तो भारतमाता की हो।

किसी वात का निर्णय करते समय, इसमे हमारे देशवासियों का क्या मत होगा? इसका विचार होना चाहिए। 'भारतमाता की जय' इस नारे का यह अर्थ है - जव कभी मेरे मन में एक संकीर्ण विचार आ जाये, उसी क्षण दूसरा भी विचार आना चाहिए कि मेरा ऐसा व्यवहार भारतमाता के लिए कैसा होगा? मेरे राष्ट्र के लिए, मेरे देश के लिए, कैसा होगा? यदि इस प्रकार का विचार हमारे नेता करते तो इन नेताओं से वे वातें नहीं होती, जो वातें उनसे हो रही हैं। लेकिन उनकी चर्चा करने का यह स्थान नहीं है। हम लोगों को तो निर्माण करना है, आलोचना नहीं। और इसलिए इस प्रकार की भावना हम वालकों के अन्तःकरण में जागृत करें और वालकों के अन्तःकरण में इस प्रकार की भावना को जागृत करने के लिए पहले हमारे अन्तःकरण में उस भावना को प्रवल निष्ठा के साथ भरें।

स्वराज्यहितचिन्तनाविण दुजी कथा नावडो
तुझ्यासमचि आमुची तनु हि देशकार्यी पड़ो।

मेरे स्वराज्य का हित कैसे होगा? मेरे देश का कल्याण कैसे होगा? इसी प्रकार का चिन्तन, इसी प्रकार की चर्चा, इस प्रकार का थोड़ा सा पागलपन हम लोगों को वहुत वड़ा वना देगा। समय अधिक होता जा रहा है, रूकना आवश्यक है।

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चम प्रवचन

गीता परिवार के पांच मूलाधारों का चिन्तन करते हुए सर्वप्रथम ईश्वरभक्ति का विचार किया तत्पश्चात गीता के महात्म्य को देखा। तीसरी बात भारतमाता और भारतमाता की भक्ति। भारतमाता के प्रति निष्ठा जगाने का हम सभी ने प्रयास किया है। पूरे संसार की सेवा हम लोगों से की जाय यह बहुत अच्छी बात है। भारतीय विचारधारा का यह मूलाधार है - "पूरा संसार परमात्मा का आविष्कार है।" और इसलिए योगवासिष्ठ में हम एक महान सिद्धान्त को पढ़ते है -

अयं निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

वसुधा एव कुटूम्बकम् - पूरा संसार ही एक परिवार है। भगवान् ज्ञानेश्वर महाराज ने इसका अनुवाद करते हुए कहा -

हे विश्वचि माझे घर। ऐसी जयाची मति स्थिर।
किंबहुना चराचर। आपण जाहला।

पूरा संसार एक है। पूरा संसार परमात्मा का आविष्कार है। इसलिए पूरे संसार की सेवा करना अभिप्रेत है। लेकिन कभी कभी होता क्या है? बहुत बड़ी बात कहने पर अपने हाथों से कुछ नहीं होता, इसलिए हम उस बात को भी दूर रखना चाहते हैं, समस्त संसार की सेवा के लिए, मानवता की सेवा के लिए हमें कुछ करना चाहिए और हम इतने संकीर्ण भी न रहें कि हम केवल अपने जाति की सेवा करें, हम अपने प्रदेश की सेवा करें। हम अपने सम्प्रदाय की ही सेवा करें। नही! इन दोनों का एक 'सुवर्णमध्य' देखिए। भगवद्गीता का दर्शन ही सुवर्णमध्य का दर्शन है। 'सन्तुलन!' बहुत इधर भी नही बहुत उधर भी नही। हम लोग सहन भी नहीं कर सके, इतनी विशालता की भी आवश्यकता नही और छोटी छोटी बातों में उलझ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाये इतनी संकीर्णता भी अभिप्रेत नहीं। और इसलिए सुवर्णमध्य का विचार हमने किया - हम भारतमाता की सेवा करेंगे। जब भारतमाता की बात हम करते हैं - तो भारतमाता केवल हिमालय से लेकर कन्याकुमारी पर्यन्त की भूमि का टुकडा नहीं है। इस भूमि के लिए हम लोग लालायित तो हैं ही, उसके प्रति श्रद्धावान् और निष्ठावान् तो हैं ही, क्योंकि इसी भूमि पर हमारे पवित्र तीर्थ और नदियाँ हैं। इतना ही नहीं इस भूमि में अनेक महात्माओं ने जनम लिया है। उन महात्माओं के विचारों का भी अनुसरण करने का हम प्रयास करते हैं।

आचार्या भारतोत्पन्ना वंदनीयाः निरन्तरम्।

हमारे देश में जो जो महापुरुष निर्माण हुए उन समस्त महापुरुषों का हम आदर करते हैं। किसी भी प्रकार भेदभाव न करते हुए भारत में जन्मे जिस किसी महात्मा ने इस देश के और इस समाज की उन्नति के लिए प्रयास किया हो वह मेरे लिए प्रमाण है। मैं संकीर्णता से बाहर आ जाऊँ, मैं प्रादेशिकता से बाहर आ जाऊँ, मैं जातियों के जंजाल से बाहर आ जाऊँ लेकिन मुझे अपनी जाँति, अपना प्रदेश, अपना संप्रदाय इन सबका स्वीकार तभी करना है जब ये भारतमाता की प्रगती के विरूद्ध नहीं है। भारत की इस भूमि पर जितने-जितने महापुरुष जन्मे हैं वे कोई भी हो उन समस्त महापुरुषोंने जो-जो विचार दिये है उन विचारों का हम श्रद्धा के साथ स्वीकार करें। ऐसा नहीं कि हम अपना विवेक खोकर उनकी हर बात को प्रमाण माने, किन्तु पहले उनका आदर तो करें, उनका अध्ययन तो करें और उसमें से आज के लिए जो-जो विचार हमें उपयुक्त लगते हैं, उन विचारों को हम अपने जीवन में लाए। जब भारत का अध्ययन करना होगा तो हमें भगवान् शंकराचार्य, भगवान् रामानुजाचार्य, महापुरुष श्री वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, जैनों के तीर्थंकर, गुरु गोविन्दसिंह एवं उनके गुरुओं की परम्परा इन सबके बारे में सोचना पड़ेगा।

जैसे इन महापुरुषों का हम लोगों को आदरपूर्वक विचार करना होगा उसी प्रकार इस देश के लिए जिन लोगो ने अपने जीवन का बलिदान किया उन अत्यन्त श्रेष्ठ हुतात्माओं का भी हमारे हृदय में अत्यन्त आदरपूर्वक स्थान होना चाहिए। हम लोग इस भारत के लिए अपने यौवन को समर्पित करनेवाले, अपने समस्त स्वप्नों का होम करनेवाले भगतसिंग को कैसे भूल सकते है? हम मदनलाल धिंग्रा को, सुभाषचंद्र बोस को, महात्मा गांधी को, लोकमान्य तिलकजी को कैसे भूल सकते है? हम किसी को भी नहीं भूलेंगे।

उनके विचारों से हम सहमत हैं या नहीं हैं यह दूसरी बात है। हमारा मार्ग कौनसा है? यह दूसरी बात है। लेकिन जिस किसी ने इस देश की उन्नति के लिए प्रयास किया होगा तो हम पहले उनको प्रणाम करेंगे और उसके बाद उनकी मीमांसा करेंगे। पहले आदर के साथ मस्तक झुकायेंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के विचारों से मै पूर्णतः सहमत नही। लेकिन स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने इस देश के उन्नति के लिए बहुत बड़ा प्रयास किया इसको मैं मानता हूँ। इसलिए उनके विचारों से सहमत न होने पर भी मैं उनके प्रति श्रद्धावान हूँ। इस प्रकार की भावना अपने अन्तःकरण में होनी चाहिए।

इस प्रकार की भावना को लेकर हम समग्र भारतीयता को हमारे सामने रखते है तो भूमि का एक सुन्दर प्रदेश, उसके तीर्थ, उसके साथ-साथ यहाँ जन्मे हुए महापुरुष और साथ-साथ..

ज्ञानिनो दानिनश्चैव कवयश्च पतिव्रताः।
स्मरणीयाः सदैवैते समाजोद्धारकास्तथा।।

इस देश में जन्मे हुए सभी ज्ञानियों को, सभी दानियों को, उत्तम विद्वानों को, साहित्यिकों को, हम प्रणाम करते हैं। वह भले किसी भी जाति का हो वह हमारे लिए वन्दनीय है। इस देश में जन्मी हुयी सतियों को और सभी समाजसुधारकों को हम प्रणाम करते हैं।

उनमें से किसी के विचारों से हम भले ही सहमत नहीं हो फिर भी उनके प्रति अनादर का एक भी शब्द हमारे मूँह से नहीं निकलना चाहिए। सभी को समग्रता से पहले स्वीकार करें।

घर में पिता-पुत्र के विचारों में भी कभी-कभी ऐक्य नही होता, दो भाईयों में भी ऐक्य नहीं होता। तो इतने विशाल देश में, इतनी लम्बी परम्परा में किसी महापुरुष ने उस स्थिति के लिए कोई विचार दिया होगा तो आज मैं उससे सहमत नहीं भी हूँ तो उससे क्या विगड़ा? मैं उस महापुरुष की धारणा, उस महापुरुष की वृत्ति का उद्देश्य ध्यान में लूँ और समाज के लिए उन्होंने जो योगदान दिया उसे जानकर मैं उनके प्रति निष्ठावान रहूँ। उनके प्रति श्रद्धा की भावना का संगोपन करता रहूँ। इस प्रकार 'भारतमाता' शब्द का प्रयोग करते हुए पूरी भारतीय संस्कृति और भारत का इतिहास हमारे सामने आना चाहिए। इस इतिहास का एक जागरण करने का प्रयास हम लोग करते हैं और बालकों में उसके प्रति श्रद्धा के भाव का निर्माण करने का प्रयत्न हम करते हैं।

भगवद्भक्ति, भगवद्गीता, भारतमाता इनके साथ-साथ और एक बात का चिन्तन हमें करना है। हमें हमारी स्थिति के साथ-साथ काल का भी ध्यान होना चाहिए। इसलिए गीता परिवार का चौथा तत्त्व है - 'विज्ञानदृष्टि'। हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। आज का समय और प्राचीन काल इसके अन्तर को हम समझें। यदि इसके अन्तर को समझे विना हम बालकों को यही कहते रहेंगे कि आपको ये बातें जीवन में लानी चाहिए, और उन बातों का उसके व्यावहारिक जीवन के साथ मेल नहीं होगा, समन्वय नही होगा तो वह बालक उसे स्वीकार नहीं करेगा और यदि करेगा तो भी वह अपने जीवन में सफल नहीं हो पाएगा। उसके जीवन को हम सफल बनाना चाहते हैं तो हमारी बात हमें विज्ञान की दृष्टि से सोचकर कहनी होगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राचीन काल में लोगों में श्रद्धा की भावना बहुत अधिक थी। एक बार कहने पर लोग मान लिया करते थे कि ऐसा करने के लिए बड़ों ने कहा हैं इसलिए मुझे ऐसा करना है। लेकिन आज बालक पूछते हैं कि ऐसा क्यों करना है? इस 'क्यों' का उत्तर भी हमारे पास आवश्यक है।

'मैं कहती हूँ इसलिए यह करना चाहिए' ऐसा कहने पर शायद कुछ दिनों तक बालक वह काम करेगा लेकिन बहुत लम्बे समय तक वह उस कार्य को नही अपनायेगा। आपको खुश करने के लिए तो वह काम करेगा लेकिन अन्तःकरण से नहीं करेगा। आपकी उपस्थिति में वह हो सकता है लेकिन आप बाहर जाते ही बालक अपना स्वातन्त्र्य लेंगे। इसलिए हम कोई भी बात कहते समय यह ध्यान रखें कि वह बात उसके मन में कैसे उतरेगी? इसलिए हमारी बात का तर्क, हमारे बात की कारण-मीमांसा, उस बात का वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक महत्त्व हमें बालकों को बतलाना चाहिए। उस बात को केवल आज्ञापालन की दृष्टि से न कहते हुए, हम उस बात को समझाकर उसके गले उतारें। यह बात करने में आपका हित क्या है? आपके परिवार का हित क्या है? आपके समाज का हित क्या है? यह बच्चों को समझाना चाहिए। जब इस प्रकार से उस बालक को समझाने का प्रयास हम करते हैं तब हो सकता है वह बालक उस बात को तुरन्त नहीं भी करेगा लेकिन कम से कम उस बात का विरोधी तो नहीं बनेगा। जब कोई विरोधी नहीं होता तब वह आधा हमारे साथ होता है। जब उसके जीवन में अनुकूलता आयेगी तब वह उस बात को करेगा भी। अतः हमें हमारे संस्कारवर्गों में ऐसी ही बाते कहनी और करवानी चाहिए जिन बातों की कारण-मीमांसा, तर्क, विज्ञानदृष्टि हम कह सकते हैं। तर्कों के उत्तर देने की पद्धति हमें डालनी चाहिए। 'पूछो मत' यह नहीं कहना चाहिए।

कभी-कभी सभी बातों के तर्क देना हमारे लिए सम्भव नहीं होता है। अनेक बातों का तर्क क्या होगा?, ऋषिओंने क्या सोचा होगा? यह हमें भी पता नहीं होता। ऐसे समय पर झूठे उत्तर देकर बालकों को समझाने का प्रयास कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसे समय 'मैं सोचकर बताऊँगी' या 'मैं अध्ययन करके बताऊँगी' यह कहना चाहिए। यह बात बालकों को बडी अच्छी लगेगी कि आपने स्पष्ट रूप से सत्य को स्वीकार किया है। मुझे भी कई बार एकाध प्रश्न का उत्तर देना नहीं आता है क्योंकि मैं सर्वज्ञ तो हूँ नहीं। मैं सीधे यह कह देता हूँ कि "भाई, इसका मुझे पता नहीं है, परन्तु मैं इसका अध्ययन करके बताऊँगा।" जब हम इतने प्रामाणिक होते हैं, जब हम ऐसी प्रामाणिकता का व्यवहार बालकों से करते हैं तब आप देखेंगे कि यही बालक आगे चलकर आपके उत्तम कार्यकर्ता बनेंगे। बालक भी जानते हैं कि संसार में कोई सर्वज्ञ तो है नहीं। सभी प्रश्नों के उत्तर इनके पास भी तैयार मिलें ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन यह मुझसे कुछ छुपाता तो नहीं है। यह कार्यकर्ता मुझसे प्रामाणिक तो है। यह बात उन्हें अच्छी लगेगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालकों के मन में हमारे लिए संशय तब जागृत होता है जब बालकों के ध्यान में आता है कि यह मुझसे कुछ छुपा रहा है, यह मुझसे अप्रामाणिक है। किसी भी बालक को ऐसा कभी नहीं लगना चाहिये कि आप उससे कुछ छुपा रहे हैं। बालकों को यह लगना चाहिए कि यह कार्यकर्ता मुझसे प्रेम करता है और मेरे हित की ऐसी बात कहता है जो दूसरे के हित में बाधक नहीं है। दूसरों का अहित किये बिना स्वयं का हित कैसे किया जाता है, यह हम बालकों को विज्ञाननिष्ठ बनकर समझाये क्योंकि आज का युग विज्ञान का युग है।

कभी-कभी हमारे सत्पुरुषों द्वारा भी संस्कारों कार्य बालकों के लिए किया जाता है। सभी धर्माचार्यों को इस प्रकार का काम करना भी चाहिये। लेकिन कहीं पर भी उन बालकों को सिखाई जानेवाली बातों में चमत्कारों का वर्णन नहीं होना चाहिए। "हमारे बाबाजी ने ऐसा किया और एक अंगुठी निकल आयी।" "उन्होंने ऐसा किया और विभूति निकल आयी" इस प्रकार का वर्णन हमारे संस्कारवर्गों में कहीं पर भी नही आना चाहिए। चमत्कारों को हम स्वीकार न करें। इस प्रकार के चमत्कार विज्ञान के साथ मेल नहीं खाते। अगर मुझे इन बातों में श्रद्धा है तो एकान्त में व्यक्तिगत रूप से मैं इन बातों के बारे में सोच लू, इनके प्रति श्रद्धावान् रहूँ। यह बात मैं किसी साधक के लिए कह भी दूँगा परन्तु संस्कारवर्गों में बालकों के सम्मुख इस प्रकार के चमत्कारों का वर्णन कदापि नहीं करूँगा। संस्कारवर्ग में कभी एकाध बार मैं इस प्रकार किसी सत्पुरुष की बात का समर्थन करूँगा तो अगली बार मुझे किसी पाखण्डी की बात का भी समर्थन करना पड़ेगा। यदि वह बाबा विभूति निकाल सकते हैं तो हमारे बाबा क्यों नही निकाल सकते? ऐसी बाते बालक सोचने लगेंगे। और फिर हम लोग असावधानी से क्यों न हो अन्धश्रद्धा को बढ़ावा देने लगेंगे। हम लोगों को श्रद्धा को तो बढ़ाना है ही लेकिन अन्धश्रद्धा का असावधानी से भी संवर्धन नहीं करना है, इस बात का सदा ध्यान होना चाहिए। अन्धश्रद्धा की बाते असावधानी से भी करने से भविष्य में हम आलोचना के पात्र बन सकते हैं। आपने अच्छे भाव से भी इस प्रकार का कुछ काम किया हो, फिर भी समाज उसकी आलोचना, उसका खण्डन करना चाहता है। संस्कारवर्गों में विषमता, अन्धश्रद्धा आदि का संगोपन तो नहीं किया जाता इस पर समाज का पूरा ध्यान रहता है। ऐसा करने से हमारे कार्य का नाश हो सकता है। अतः इस प्रकार की मर्यादाएँ हमें अवश्य रखनी चाहिए।

हम विज्ञान युग में जी रहे हैं इसलिए प्राचीन काल का आचार-विचार और आज का आचार-विचार इसमें कुछ तो अन्तर अवश्य होगा। आज पुरा संसार सिमट गया है, निकट आ गया है। ऐसी स्थिति में हम यदि सभी के सभी प्राचीन आचारों का आग्रह रखते रहेंगे तो बड़ी कठिनाई होगी। निरन्तर इस बात का चिन्तन मनीषियों को करना पड़ता हैं। स्वयं रामदास स्वामी ने ३०० वर्ष पहले कहा कि -

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यथासांग ते कर्म काही घडेना, घडे धर्म ते पुण्य गाठी पडेना।"

हमारे धर्मशास्त्र में लिखा है कि भगवान् की पूजा के लिये नदी अथवा वावड़ी का जल होना चाहिए। अब यदि मैं मुम्बई में रहता हूँ और मेरे निकट कही पर भी नदी अथवा वावड़ी नहीं है - जलाशय का पानी लाये कहाँ से? ऐसी अवस्था में मैं महानगरपालिका के नल से पानी नही लुँ तो कहाँ से पानी लाऊँ? अव उस आचार में कुछ विज्ञान अवश्य था। लेकिन आज के युग में इस आचार का पालन करना मुम्वई जैसे शहर में असम्भव है। ऐसी अवस्था में हमें हमारे आचार-विचारों को थोड़ा-सा परिवर्तित करना पड़ेगा। मैं परिवर्तन शव्द का प्रयोग कर रहा हूँ। मैं त्याग करने की वात नहीं कह रहा हूँ। मुझे सुविधा होती फिर भी मैं दूसरे पानी का उपयोग करता तो वह गलत होता। लेकिन यदि सुविधा ही नहीं है तव उस आचार को परिवर्तित करने में वुराई नहीं है। इसलिए हम आचार-विचारों का भी समर्थन करते समय आज के परिप्रेक्ष्य में उन आचार-विचारों को वालकों के सामने रखें।

आज के युग में आवश्यक आचार-विचारों का समर्थन करते समय हमें एक वात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन आचार-विचारों की आलोचना हम भूल से भी नहीं करें। प्राचीन काल में वताया गया आचार गलत भावना से नहीं वताया गया था। उस समय तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में उस आचार का कुछ महत्त्व अवश्य रहा होगा।

उदाहरण के लिए मैं आपको एक वात वताता हूँ। हमारे आचार-विचारों में पूजा करते समय किससे स्पर्श नहीं करना, कैसे वस्त्र पहनना, अन्य व्यवहारों में वस्त्र कौनसे होने चाहिए? इन सव वातों का वड़ा महत्त्व है और ये विचार विज्ञान के विरुद्ध नहीं हैं। यह आचार विज्ञान के विरुद्ध कैसे नहीं है इसको जानना हो तो 'हेलन केलर' की जीवनी को देखना चाहिए।

हेलन केलर जन्म से ही अन्धी, गुँगी और वहरी थी। अन्धी, गुँगी और वहरी होने पर भी इस महिला ने अपने जीवन में महान् कार्य किया। परमात्माने इन तीनों शक्तियों से उसे वंचित रखते हुए उसके ऊपर एक विशेष कृपा कर दी थी - उसकी घ्राण शक्ति वड़ी विलक्षण थी। केवल सूंघकर वह अनेक वातें वता सकती थी। कौन शयन-कक्ष से आया है? कौन स्नान-गृह से आया है? कौन पूजा करके आया आया है? और कौन रसोईघर से आया है? यह निकट आते ही वह वता सकती थी। वह किसी से मिलते ही यह वता सकती थी कि इसका व्यवसाय क्या है? कौनसा काम करके यह लौटा है? जव उनसे यह पूछा गया कि वह यह सव कैसे वता सकती है? तव उन्होंने इसकी कारण-मीमांसा करते हुए कहा कि प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग गन्ध होती है। हमारे देह से एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध प्रायः निकलती है। घ्राणशक्ति की विशेषता के कारण ही पुलीस दल के कुत्ते चोर को पकड़ सकते हैं। एक कुत्ता दस हजार प्रकार के गन्धो को पहचानता है। मैं यह वात इसलिए जानता हूँ कि कुत्तों को प्रशिक्षण देने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का केंद्र पुणे में ही है और उसके प्रशिक्षक मेरे अच्छे परिचित हैं। वे मुझे बता रहे थे कि जिस स्थान पर चोर ने चोरी की उस स्थान पर उस चोर के गन्ध के परमाणु गिरते हैं और कुत्ता उन्हें सुंघता है। चोर जिस मार्ग से दौड़ता हुआ गया उस मार्ग पर भी उस गन्ध के परमाणु गिरते हैं और कुत्ता उस मार्ग से चोर को ढूँढता हुआ पीछा करता है। दस हजार लोगों में भी वह चोर छुपकर बैठा हो तब भी उसे वह ढूँढ निकालता है। हम कहीं पर थोड़ी देर बैठते है तो वहाँ पर हमारे गन्ध के परमाणु गिरते हैं। मैंने किसी को स्पर्श किया तो मेरे गन्ध के परमाणू उसके पास छूटते हैं। मैंने केवल क्षणभर के लिए ही स्पर्श किया लेकिन फिर भी रात-दिन मेरे देह से निकलनेवाले इस प्रक्षेपण के केंद्र में इस गन्ध के परमाणु हैं और वे वहाँ गिरते हैं। यदि यह सत्य है तो इस बात को भी हमें जानना पड़ेगा कि पापी के शरीर से निकलनेवाले गन्ध के परमाणु और पुण्यात्मा के शरीर से निकलनेवाले गन्ध के परमाणु इसमें अन्तर होना चाहिए। इस प्रकार सबके भीतर से निकलने वाली उर्जा, उत्सर्जित होने वाली गन्ध भिन्न-भिन्न हैं। हेलन केलर ने भी इसी बात को दोहराया कि जब एक क्रिया किसी व्यक्ति से बार-बार एक ही स्थान पर बैठकर की जाती है तो वहाँ का वातावरण भी उसी प्रकार की गन्ध से भर जाता है। यदि आप अपने देवालय में बैठकर रोज पूजा ही करते हैं, और नित्य वहाँ पर धूप-दीप जलाते हैं, पुष्प चढ़ाते हैं, नित्य वहाँ पर शुद्ध भाव से प्रार्थना करते हैं तो वहाँ के परमाणु अलग प्रकार के बन जाते हैं। वहाँ का पावित्र्य, वहाँ का मंगल वातावरण हम बनाये रखना चाहते हैं तो हमें अन्य काम वहाँ पर नहीं करने चाहिए। वहाँ पर जाते समय शुद्ध होकर जाना चाहिए ताकि अन्य परमाणु वहाँ प्रवेश न करें। इस प्रकार स्पर्श-आचार के पीछे वैज्ञानिक दृष्टि है। इस आचार का, हमारें ऋषियोंने बतायी हुयी इस मर्यादा का, पालन आज हम किसी कारण से नहीं भी कर सकते हैं फिर भी हमें उस आचार के प्रति श्रद्धावान् होना चाहिए। उनकी कम से कम आलोचना तो नहीं करनी चाहिए। हम कई बार कह देते हैं - 'हमारे सासूजी का तो ये ही बहुत चलता है।' ऐसा हमें कदापि नही कहना चाहिए। यदि आप उस आचार का पालन नहीं कर सकती है तो कम से कम उस विचार के प्रति श्रद्धावान् रहते हुए उसकी आलोचना नहीं करें।

विज्ञानयुग में रहनेवाले हम स्पर्श के विज्ञान को भली भाँति जानते हैं। आपको ऑपरेशन थिएटर में कोई ऐसे ही जाने नहीं देता, जिन उपकरणों से ऑपरेशन किया जाता हैं उनको स्पर्श करने नहीं देता, इसका भी यही कारण है। कम्प्युटर रूम में हम जूतें बाहर निकालकर जाते हैं क्योंकि वह संगणक बड़ा संवेदनशील है और जूतों के साथ दो-चार भी धूलिकण अन्दर चले जाते हैं तो संगणक खराब हो सकता है। यदि संगणककक्ष अथवा शल्यक्रियागृह में इतनी स्वच्छता रखनें में हम विश्वास करते हैं तो फिर पूजा घर में इसका ध्यान क्यों नहीं रखें?

हम ऐसे आचार-विचारों का पालन कर सकते हैं कि नहीं यह दूसरी बात है परन्तु कम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से कम हमारे संस्कारवर्गों में और अपने जीवन में इस प्रकार के विचारों की आलोचना हम नहीं करें।

मैं आपको मेरे जीवन की एक बात बताता हूँ। मेरे एक अध्यापक थे। उनका नाम 'परमपूज्य जेरे शास्त्री' था। मैंने उनसे वेदान्त का अध्ययन किया। उनका आचार-विचार बड़ा कड़ा था। मेरे हाथ का पानी भी उनको चलता नहीं था और मुझे भी कभी उसका बुरा नहीं लगा। वे मुझसे कहते थे कि, व्यासजी आप बड़े विचित्र है, आप पता नहीं पुराने विचारों के हैं या आधुनिक है। मैं कहता था, "मेरे जीवन में मैं आप जैसा आचारवान् शायद कभी नहीं बन पाऊँगा। लेकिन आचार-विचार का इस प्रकार का उदाहरण अगली पीढ़ी को देखने को भी मिलना चाहिए। इसलिए मैं आप जैसे आचारवान् लोगों की सेवा करता रहूँगा। मैं अपने जीवन में चाहें उसको न ला पाऊँ, लेकिन मैं उनकी सेवा करूँगा।" उसी प्रकार, चाहे आप अपने घर के भीतर सभी आचारों का पालन न भी कर सकें, तो भी जो आचार का पालन करनेवाली वृद्ध महिलाएँ, वृद्ध पुरुष, आपके घर में होंगे, आपके संप्रदाय में होंगे या अन्य कहीं भी होंगे, आपको यह कहना चाहिए "मुझसे होता नहीं है, लेकिन वो कर रहें हैं यह भी तो अच्छी बात है।"

तो एक ओर श्रद्धाहीनता का वातावरण निर्माण नहीं होना चाहिए दूसरी ओर अन्धश्रद्धा को भी बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए। इन दोनों के बीच में से हम लोगों को चलना है, इसको ध्यान में लीजिएगा। इसलिए किसी भी आचार-विचार की आलोचना करते समय बड़ी सावधानी हम लोगों को बरतनी है। क्योंकि, यह भी एक विज्ञान की दृष्टि है। आज तक इन बातों को हम लोग प्रयोगशाला में प्रमाणित न भी कर पायें हो लेकिन सम्भव है अगली पीढ़ी का विज्ञान इनको प्रमाणित करेगा। क्योंकि विज्ञान तो एक प्रकट होनेवाली विचारधारा का प्रवाह है। आज के विज्ञान को इसकी जानकारी नहीं भी होगी, लेकिन हो सकता है, कल कोई वैज्ञानिक इस बात का महत्त्व सिद्ध कर दे।

यदि सवा-सौ डेढ-सौ वर्ष पहले, हम विमानों का वर्णन करने बैठ जाते तो कोई भी यही कहता कि आप अन्धश्रद्धा का समर्थन करते हैं। मानव कभी उड़ सकता है क्या? पंछी उड़ते हैं। लेकिन उसके पश्चात् राइट बन्धु आये। उन्होंने विमानों की खोज की। और आज करोडों लोग नित्य आकाश में उड़ रहें हैं। अब वायु यात्रा साधारण बात है। उस समय का मानव उसका समर्थन नहीं कर सकता था। तो जिस प्रकार डेढ-सौ वर्षो में विज्ञान की यह प्रगति हुई, उसी प्रकार विज्ञान की और भी प्रगति आगे सौ वर्षो में हो सकती है। जिन आचार-विचारों का पालन हमारे प्राचीन महापुरुष करते और कराते रहें, उन आचार-विचारों का समर्थन करनेवाला एकाध वैज्ञानिक जन्म भी ले सकता है। इसलिए हम लोग उनकी आलोचना करने का पाप नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करें। यह बात हमारे समझ में नहीं आती, हम अपने जीवन में नहीं ला सकते, इतना कहने में कोई बुराई नहीं है। किन्तु आलोचना नहीं करनी चाहिए।

विज्ञानदृष्टि के अन्तर्गत एक बात और आती है। पूरे संसार के मानवों की समता का विचार हम निरन्तर अपने संस्कार शिविरों में रखें। स्त्री और पुरुष की समता का विचार, जातियों की समता का विचार हम रखें। सभी समान है, इस विचार का हम कभी खण्डन नहीं करें। हम सबको समान मानें। अब सबको समान मानने पर भी अपने आप निसर्गतः कुछ मर्यादायें आती ही हैं। स्त्री और पुरुष समान, ऐसा कहने पर भी आखिर स्त्री-स्त्री है, और पुरुष-पुरुष है, इसलिए उनकी अपनी मर्यादायें रहेंगी। यह समान है ऐसा कहने पर भी, जो रात दिन भगवान् की सेवा पूजा करता है और गीताजी का पाठ करता है उसमें और रात दिन दूसरे काम करनेवाले व्यक्ति में कोई अन्तर रहेगा लेकिन यह अन्तर बाहरी अन्तर है। हम लोगों के पास विवेकबुद्धि चाहिए, क्योंकि आनेवाले युग में मानवीय विषमता का कोई विचार सहा नहीं जायेगा। और मेरी यह धारणा है कि इस प्रकार के विचारों को सहना भी नहीं चाहिए। मनुष्य मात्र समान है इसी प्रकार का विचार हम लोगों को बालकों के सामने लाना चाहिए। श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते है -

"जे जे भेटते भूत। ते ते मानिजे भगवन्त
हा भक्तियोग निश्चित। जाण माझा।"

परमात्मा सबमें विराजमान् है। हर व्यक्ति में मुझे देखनेवाला मेरी भक्ति करता है।

"सीयाराममय सब जग जानी। करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी।"

इसी प्रकार की भूमिका हमारे सन्तों ने ली और शास्त्रकारों ने प्रतिपादित की। 'सब समान' इसी भूमिका पर आरूढ़ होकर हम अपना कार्य करतें रहें। विज्ञान के युग में जब हम लोगों को काम करना है तो इन पथ्यों का पालन करते हुए यदि अपना काम करेंगे तभी जाकर, हम बालकों को वास्तव में, वे जितने श्रद्धावान् हैं उससे अधिक श्रद्धावान् बना पायेंगे। आज वे जितने कुशल हैं उससे अधिक कुशल बना पायेंगे। वे जितने निष्ठावान् है उससे अधिक निष्ठावान् बना पायेंगे। वे जितने सफल हैं उससे अधिक सफल बना पायेंगे। और ऐसा बना पायेंगे, तभी हमारे शिविरों की, वर्गों की सफलता, संस्कार कार्य की सार्थकता सिद्ध होगी।

संस्कारकेंद्रों में संस्कार लिया हुआ बालक अपने जीवन में सफल होना ही चाहिए। यदि मेरे किसी संस्कार के कारण उसके व्यावहारिक जीवन में वह असफल होने की सम्भावना निर्माण होती है, तो मुझे ऐसा संस्कार उसको नहीं देना चाहिए। इस विज्ञानदृष्टि को लेकर हम अपना कार्य करें।

पहली बात ईश्वरभक्ति, दूसरी बात भगवद्गीता का प्रामाण्य, तीसरी बात भारतमाता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की आराधना और चौथी बात वैज्ञानिकदृष्टि। अब एक बात और देखेंगे - वह सिद्धान्त नहीं अपितु इन चारों अत्यन्त् महान् सिद्धान्तो का एकत्रित स्वरूप है। उस स्वरूप का आप अपने सामने नित्य दर्शन करते हैं। शिविर में तथा हमारे संस्कारकार्य में स्वामी विवेकानन्दजी की प्रतिमा सर्वत्र होनी चाहिए, इसका आग्रह हमें रखा है। स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन, उनका कार्य, उनका व्यक्तित्व, इन सब बातों का पूरा अध्ययन करने के पश्चात्, आपके यह ध्यान में आयेगा कि हमारे बालकों के सामने रखने के लिए इससे बढ़िया और कोई प्रतीक हो नहीं सकता। विवेकानन्दजी के बारे में मैं आपको दो बातें बतलाऊँगा।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, जो हमारे देश के प्रधान मन्त्री रहे, उन्होंने एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है। भारत को जानना चाहते हो तो स्वामी विवेकानन्द को जानो। विवेकानन्दजी का अध्ययन करने से पूरी भारतीय संस्कृति का अध्ययन हो जाता है। जो भारत को जानना चाहे, उसे विवेकानन्दजी को जानना चाहिए। ऐसा जब पण्डितजी ने कहा तो उसका विशेष महत्त्व है। दूसरी एक बात, जो बड़ी अच्छी लगी। हमारे देश में जो अनेक प्रकार के दिन मनाये जाते हैं, जैसे 'बालदिन' मनाया जाता है, 'शिक्षकदिन' मनाया जाता है। इस प्रकार के दिनों में युवा दिन मनाने के लिए हमारे और एक प्रधानमन्त्री स्व. राजीव गांधी ने स्वामी विवेकानन्दजी के जयन्ती का चयन किया। आप लोगों को पता है, कि हमारे देश का युवा दिन कौनसा है? १२ जनवरी, यह हमारे देश में युवा दिन के रूप में मनाया जाता है और १२ जनवरी, यह स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म दिन है। जिस प्रकार इस शताब्दि में मकर संक्रान्ति १४ जनवरी को आती है। उसी प्रकार पिछली शताब्दी में १२ जनवरी को आती थी। स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म मकर संक्रान्ति के दिन हुआ। स्व. राजीव गांधी ने यह जो कार्य किया वह हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और बड़ा अभिनन्दनीय कार्य है। अर्थात उनके जन्मदिन को युवा दिन के रूप में मनाया जायें, यह बात बाद में हुई। १० वर्ष पहले हमनें स्वामी विवेकानन्दजी को हमारे आदर्श के रूप में स्वीकार किया।

समस्त भारत के युवकों के प्रतिनिधि उनको क्यों कहा जाये? और हमारे सामने आदर्श के रूप में उन्हें क्यों रखा जाये? ऐसा भी आप सोचेंगे। मैं अपने जीवन में व्यक्ति पूजक नहीं रहा हूँ, और किसी को होने की भी आवश्यकता नहीं है। हम लोगों को अपने जीवन में सिद्धान्त की आराधना, सिद्धान्त की पूजा करनी चाहिए। और वे सिद्धान्त किसके जीवन में हमे दिखते हैं इसको सर्वदा जाँचते रहना चाहिए। स्वामी विवेकानन्दजी को हम लोग जब स्वीकार करते हैं, तब किसी बाबा के रूप में नहीं करते हैं, उनका आशीर्वाद लेकर मेरा भला हो जाये, ऐसा बिल्कुल नहीं कहतें है। स्वामी विवेकानन्दजी का स्वीकार हम व्यक्ति के रूप में नही अपितु एक विचार के रूप में करते हैं। अत्यन्त महान् सद्गुणों को हमने उनमें साकार देखा और जिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सद्‌गुणों की आराधना करने से हमारे देश के बालकों का कल्याण होगा, और हमारे भारतवर्ष का कल्याण होगा, ऐसे सभी सद्‌गुण यदि हमें एक महापुरुष में एक स्थान पर मिल जाते हैं तो उसको प्रतीक के रूप में स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं लगती।

कौन-कौन से गुण हम स्वामी विवेकानन्दजी में देखते हैं? सबसे पहली बात है, हमारी भारतीय संस्कृति का प्राण है 'आध्यात्मिकता'। स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन में आध्यात्मिकता का प्राचुर्य है। पूरी तरह वे एक आध्यात्मिक जीवन है, आध्यात्मिक ज्वाला है। लेकिन इस आध्यात्मिकता के साथ-साथ और एक बात जुड़ी हुई है। इस प्रकार की आध्यात्मिकता और भी महापुरुषों में मिलती है। लेकिन स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन जिस प्रकार एक ओर आध्यात्मिकता से भरा हुआ है, उसी प्रकार दूसरी ओर वह राष्ट्रभक्ति से भरा हुआ है। वे जब भारत के बारे में बोलते हैं, तो उनका आवेश अलग हो जाता है। ईश्वर की भक्ति में पूर्ण निष्ठावान्, आध्यात्मिकता से भरपूर, लेकिन भारतमाता उनकी आराध्या और इसलिए विदेशों से लौटने के पश्चात उन्होंने जो भाषण दियें हैं, उन भाषणों की पुस्तिका का नाम है 'From Colombo to America' विवेकानन्दजी लौटकर आये और उन्होंने रामेश्वर में अपना पहला भाषण दिया और वहाँ से लेकर अलमोड़ा तक, कश्मीर तक, उन्होंने जो भाषण दिये है, उन सभी व्याख्यानों में, विवेकानन्दजी ने एक बात स्थान-स्थान पर कहीं - "कुछ वर्षों के लिए भूल जाओ उन देवताओं को जिनको हमने देखा नहीं। मेरे देश के एक चमार में, मेरे देश के एक किसान में, मेरे देश के एक भूखे-नंगे भिखारी में पहले परमात्मा को देखना सीखो। भारतवासियों की सेवा करों और भारतमाता को अपना आराध्य बनाओ। यह राष्ट्रवाद की हुंकार है। यह देशसेवा का आवाहन है।"

स्वामी विवेकानन्दजी की यह विशेषता है कि उन्होंने कभी भी केवल आध्यात्मिकता का चोला नहीं पहना। आध्यात्मिकता के साथ राष्ट्रवाद को, राष्ट्रीयता को, देशभक्ति को पूरी तरह जोड़ दिया। जब पहली बार स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिका से लौटकर आये तो उन्होंने अमेरिका का बड़ा सुन्दर वर्णन किया। "ओह! मैने क्या-क्या देखा। कितने बड़े देश, कैसी समृद्धियाँ।" दूसरी बार वे वहाँ से आये तो उन्होंने कहा, "मैंने वह भी देखा और मैंने यह भी देखा कि इन देशों का भविष्य संकट में है। इसलिए मैं भारतीय महिलाओं को यह कहूँगा कि विदेश की ओर कभी मत देखियेगा। आपके आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। इस बात को भूलियेगा नहीं।" विवेकानन्दजी में यह जो हुंकार है, यह हुंकार आपको अन्य लोगों में नहीं मिलेगी। और इसलिए आध्यात्मिकता के साथ देशभक्ति को जोड़ना, यह उनका एक चमत्कार है। स्वामी विवेकानन्दजी प्राचीन है या आधुनिक है? वे प्राचीन भी हैं, क्योंकि समस्त प्राचीन सिद्धान्तो को उन्होंने स्वीकार किया है। वे जब बात करते हैं तो पुरुषार्थ की बात करते हैं। वे जब बात करते हैं तो वेदों की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बात करते हैं। विवेकानन्दजीने जीवन के अन्तिम दिन, ४ जुलाई १९०२ को एक बात कही कि मैं चाहता हूँ कि एक सुन्दर वेदविद्यालय की स्थापना हो। उनकी निष्ठा हमारी प्राचीन आचार-विचार की प्रणाली में है। लेकिन उन्होंने इस बात का सर्वदा ध्यान रखा कि, ये मेरे प्राचीन शास्त्र, यह मेरी प्राचीनता, आधुनिकता के जरा भी विरुद्ध न हो। और इस कारण वे सर्वदा आधुनिकतम बने रहें। वे आधुनिक भी हैं और वे प्राचीन भी हैं। बंगाल में जब उस समय अकाल पड़ा था तो उन्होंने कहा - 'हमने मठ के लिए जितना पैसा इकठ्ठा किया है, वह पूरा का पूरा पैसा अकालग्रस्त लोगों की सेवा में समाप्त कर दो क्योंकि मुझे अकालग्रस्त लोगों को देखते हुए, उनकी कोई सेवा न करते हुए अपना मठ बनाना स्वीकार नहीं।' ये विचार हम लोगों को उनके साहित्य से प्राप्त होते हैं। उनके जीवन में झंझावात की तरह यें विचार उमड़ते-घुमड़ते रहे। एक और आध्यात्मिकता के साथ राष्ट्रीयता का समन्वय उन्होंने दिखाया। दूसरी ओर प्राचीनता के साथ आधुनिकता का समन्वय उन्होंने दिखाया। विवेकानन्दजी को दोनों मोर्चों पर लड़ना पड़ा, इस बात को ध्यान में लीजिएगा। जब प्राचीनता की बात करते तो आधुनिक लोग उनका विरोध करते थे। जब वे आधुनिकता की बात करते तो पुराने पण्डित उनका विरोध करते थे। अब ऐसे महापुरुषों को संघर्ष करना ही पड़ता है, उन्होंने वह किया और दोनों बातों का समन्वय अपनें जीवन में साकार करने का प्रयास किया। विचारधारा की दृष्टि से वे पश्चिम के हैं कि पूरब के हैं? स्वामी विवेकान्दजी ने एक बात कही। जो बात जहां पर अच्छी लगती है उसको स्वीकार करो। यह मेरे देश का है कि बाहर का यह विचार किये बिना स्वीकार करों। हमारे देश में उसको लाओ। क्योंकि उसमें देश की भलाई है।

बेलूर मठ में ठाकुर रामकृष्ण देव का जो मन्दिर बनाया है, उस मन्दिर का शिल्प कैसा है? उस मन्दिर का निर्माण करने से पूर्व विवेकान्दजी पूरे विश्व में भ्रमण करके आये थे, और पूरे विश्व में अनेक बातों को देखते-देखते वे स्थापत्यशास्त्र की विशेषताएँ इकठ्ठे कर रहे थे, और आपको बेलूर मठ के रामकृष्ण मन्दिर में पूरे संसार के समस्त शिल्पों का समन्वय मिलेगा। कोई बात इटली से लायी है, कोई बात भारत की है, कोई बात अमेरिका से लायी है, कोई बात जर्मनी से लायी है, कोई बात जापान की है। उन्होंने अनेक देशों की विशेषताओं का सम्मेलन वहाँ पर कर दिया।

वेदों में भी यही बात कही - 'विश्वमानुषाः'। पूरे विश्व का मैं नागरिक बन जाऊँ और विश्व के उत्तमोत्तम विचारों को मैं स्वीकार करूँ, यह बात हमें विवेकानन्दजी में दिखाई देती है। आपने वेद का एक मन्त्र सुना होगा -

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।"

पूरे संसार से अच्छे विचार मेरी ओर आते रहे। जब मैं विचारों को स्वीकार करूँ तो उसमें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह बात नहीं लाऊँ कि यह यहाँ का है कि वहाँ का है? यदि वह अच्छा है, प्रगति करनेवाला है, मेरे देश की भलाई करनेवाला है, तो हमें उसको लाना ही होगा। परन्तु हमने इस दृष्टिकोण को समझा नहीं। हम विदेश से वस्तुएँ लाते रहते हैं। साडी लायी, गाड़ी लायी, परफ्यूम लाया, उलझलुल चीजें लाते रहते हैं। जापान का आदमी आयात करता है तो एक मशिन वहाँ से लाता है। किसलिए लाता है? मशिन को आयात करने की परम्परा अपने देश में स्थापित करने के लिए नहीं लाता। लेकिन मैं भी अपने देश में उस प्रकार की एक मशीन बनाऊँगा ताकि मेरे देशवासियों को उस प्रकार की मशीन भविष्य में वहाँ से लानी ही नहीं पड़े। वे कल्पनाएँ आयात करते हैं। तन्त्रज्ञान लेकर आते हैं। इस प्रकार, हमारे देश में हम अच्छे विचारों को स्वीकार करके, उन विचारों को इतना अपना लें कि उन विचारों के कारण हमारे देश की प्रगति होने लग जाये। ये विचार हमें उस महात्मा ने दिये। यदि इस प्रकार का आयात हम लोग करते, तो हम भी जापान की तरह प्रगति कर लेते। हमने यह किया नहीं। छोटी-छोटी बातों के लिए हम विदेशों पर क्यों निर्भर होते हैं, पता नहीं। इसलिए अन्यों पर निर्भर रहने का भाव हम में आया और हमने स्वयम् कुछ करके दिखाने की हिम्मत नहीं रखी। हमारे भीतर पूरे संसार का एकत्व हो, लेकिन पूरे संसार का एकत्व भी मेरी भारतमाता की सेवा के लिए हो, मेरे समाज की सेवा के लिए हो, यह भाव जागृत होना चाहिए।

स्वामी विवेकान्दजी में हम लोग एक बात और देखते हैं। साधना की सभी पद्धतियों का समन्वय! आप उनके ज्ञानयोग पर प्रवचन सुन सकते हैं, कर्मयोग पर सुन सकते हैं, भक्तियोग पर सुन सकते हैं, राजयोग पर सुन सकते हैं। इन सभी प्रवचनों पर पुस्तकें उपलब्ध है। उन्होंने केवल किसी एक मार्ग का आग्रह कभी नहीं रखा। विवेकानन्दजी ने यह बात साफ-साफ शब्दों में कह दी कि सभी के भीतर परमात्मा है, उसको जागृत करना है।

ये सभी के सभी विचार सकारात्मक हैं। विवेकानन्दजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कभी भी हम लोगों को नकारात्मक चिन्तन नहीं दिया। उन्होंने जहाँ-जहाँ हमारे देश में नकारात्मक विचार देखे उन पर करारा प्रहार किया। उन्होंने कहा, "यह क्या धर्म है? अस्पृश्यता ही धर्म हो गया? बस मुझे छुओं नहीं, केवल यही धर्म हो गया? बाकी कुछ भी करों, कितनी भी चोरी करो, कितना भी भ्रष्टाचार करो; बस पूजा के समय, मुझे छुओ नहीं, मुझे स्पर्श नहीं करो, यह धर्म है क्या?" इस प्रकार की आलोचना करते समय वे जरा भी हिचकिचाते नहीं थे। लेकिन प्रहार करते समय भी उन्होंने कहा कि ये प्रहार मैं इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि मुझे देशवासियों की श्रद्धा को तोड़ना है। उनको तो मुझे सुधारना है, ठीक करना हैं। ऐसे समस्त अच्छे-अच्छे विचारों का एकत्रित रूप हमें उनमें मिलता है, और इन सिद्धान्तों के कारण हम विवेकानन्दजी को एक प्रतीक के रूप में स्वीकार करते हैं। फिर से एक वार मेरे इस वाक्य को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोहराता हूँ।

स्वामी विवेकान्दजी हमारे लिए एक व्यक्ति नहीं है, एक विचारों का साकार स्वरुप हैं। इसलिए हमने उनको एक साकार विग्रह के रूप में स्वीकार किया है।

भगवान् श्रीराम केवल व्यक्ति हैं क्या? भगवान् श्रीराम सद्गुणों के प्रतीक हैं। संसार के समस्त गुणों को एकत्रित कीजिएगा और उनकी सूचि बनाकर फिर भगवान् के जीवन को जांचियेगा। आश्चर्य होगा आपको, सभी के सभी गुणों की पराकाष्ठा भगवान् श्रीराम में हमें मिलती हैं। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा, 'धर्मशास्त्र की पुस्तकें पढ़ने की क्या आवश्यकता है? राम के समान जीवन जीओं, धर्म तुम्हारे जीवन में अपने आप आ जाएगा।'

रामादिवत् वर्तितव्यम्।
रामो विग्रहवान् धर्मः।

राम धर्म के साकार रूप है। उसी प्रकार, हमें लगता है कि भारत के उत्थान के साकार रूप स्वामी विवेकानन्दजी हैं। इसलिए भारतीय उत्थान के विचारों के साकार रूप में हम लोगों ने विवेकानन्दजी की प्रतिमा को अपने सामने रखा है। किसी बाबा के रूप में नहीं, किसी स्वामी के रूप में नहीं, इसको ध्यान में रखना चाहिए। ये पाँच बातें हमारे समस्त आचार-व्यवहार का मूल आधार हैं। ये हमारे पंचप्राण है। यथामति इसका चिन्तन मैंने आपके साथ बैठकर किया। इसके पश्चात् भी हम लोगों को कुछ करना रह जाता है। केवल बात ही बात को सुनते रहें और हमें क्या करना है? इसका पता हमें नहीं लगा तो केवल सुनकर हमने क्या पाया? सुनकर हमने वही किया जो हमारी माताएँ मन्दिरों में किया करती हैं। कपास साथ में ले जाती हैं, बत्तियाँ बनाती रहती हैं और कथा सुनकर उठकर चली जाती हैं। क्या कहा था महाराज नें? "बोले तो बहुत कुछ, लेकिन हमारे ध्यान में कुछ नहीं रहा।" इस प्रकार का श्रवण आप करें, ऐसा मुझे नहीं लगता। इसलिए इतना सब सुनने के पश्चात् हम लोगों को अपने जीवन में क्या करना चाहिए? इस पर सोचना चाहिए। सायंकाल के थोड़े समय में इसकी चर्चा अवश्य करेंगे।

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षष्ठम प्रवचन

मंगलमय परमात्मा की अत्यन्त बड़ी कृपा रही कि आप लोंगो के साथ बैठकर गीता परिवार के द्वारा प्रवर्तित संस्कार कार्य के जो मूल विचार हैं उन विचारों को एक बार पुनः प्रकट करने का अवसर मुझे मिला। इस मालिका को 'प्रवचनों की मालिका' कहा गया तो वैसे यह अन्तिम प्रवचन है। किन्तु, आज मैं केवल प्रवचन जैसी बात नहीं करने जा रहा हूँ। श्रवण भक्ति हमने कर ली। उसके पश्चात् हम थोड़ी सी आपस में बातचीत भी करें। कुछ समय के लिए, मैं आपसे संवाद करना चाहता हूँ। भगवद्गीता भी एक संवाद है।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषम् अद्भुतम् रोमहर्षणम्।। (१८-७४)

संजय ने कहा कि मैंने कैसा दिव्य संवाद सुना! हमारी परम्परा संवादों से सीखने की रही है। एकत्रित बैठकर संवाद हो और संवाद में निश्चित रूप से केवल एक पक्ष नहीं बोलता है, दूसरे पक्ष को भी कुछ कहना होता है, या पूछना होता है। तो जब इस संस्कार कार्य के साथ हम लोग जुड़ने जा रहें हैं, जुड़ रहे हैं, तो हमारे अन्तःकरण को स्वच्छ करने के लिए, हमारे विचारों को सुलझाने के लिए, हमने इस मौलिक बातों को यहाँ पर सुना। किन्तु केवल सुनने से ही सब बातें आपको आ गयी, या आपको जँच गयी, या आपके गले उतर गयी, ऐसा मानना ठीक नहीं होगा। तो मैं पहले आपसे पूछूँगा कि कौन से पाँच मूल आधार इस चिन्तन के हैं। एक-एक आधार एक-एक बहन बताएँ, ऐसी मेरी अपेक्षा है।

१) हमारा यह कार्य भगवद्भक्ति का कार्य है, और ईश्वरनिष्ठा, यह हमारे कार्य का एक मूल आधार हैं।

२) भगवद्गीता का प्रामाण्य मानकर हम लोग चलते हैं। भगवद्गीता में समस्त वेदशास्त्रों का सार आया हुआ है और अखिल मानवमात्र के उद्धार के लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवद्गीता है। मानव जीवन में विवेक का जागरण भगवद्गीता द्वारा होता है। इसलिए भगवद्गीता को हम हमारे कार्य का दूसरा मूल आधार मानते हैं।

३) तीसरी बात, भारत की सेवा। हम लोग भारत के पुत्र हैं। भारतमाता केवल भूमि के रूप में नहीं, इस भूमि की परम्परा, यहाँ की संस्कृति इसकी सेवा करने का लक्ष्य, हमारे जीवन में हमारे बालकों के सामने रहे, यह उद्देश्य परिपुष्ट करना, यह भी इस संस्कार कार्य की एक मूल भूमिका है।

४) हम विज्ञान युग में जी रहें हैं, इसलिए हम लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए। हम श्रद्धा का भाव बढाएँ। अन्धश्रद्धा एवं चमत्कारों का समर्थन भूल से भी नहीं करें।

५) स्वामी विवेकानन्दजी का दिव्य जीवन एक व्यक्तित्व के रूप में नहीं किन्तु एक विचार और आदर्श के रूप में हम अपने सामने रखते हैं।

इतना सब कहने के पश्चात् और सुनने के पश्चात् अब हम लोगों को इस कार्य की प्रत्यक्ष कार्यवाही के बारे में कुछ सोचना चाहिए। यदि हमें कोई बात अच्छी लगी है और उसके कारण हमारे जीवन में उज्ज्वलता आ सकती है, दिव्यता आ सकती है, तो उसके लिए मुझे प्रयास करने चाहिए। मैं स्वयं उसके लिए कुछ न कुछ करूँ, इस प्रकार का संकल्प मेरे अंतःकरण में जागृत हो। हमारे शास्त्रकारों ने संकल्प को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। वेद में मन्त्र आते हैं

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।"

मेरे मन में उत्तम संकल्प जागृत हो। आगे जाकर कौन, कितना, क्या-क्या कर पायेगा, यह दूसरी बात है क्योंकि प्रत्यक्ष किसी भी कार्य की कार्यवाही आरम्भ करने के पश्चात बाधाएँ आती ही हैं। और यह काम तो ऐसा है कि उसमें कठिनाईयाँ निर्माण होती भी रहती हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए हमें कुछ और भी व्यवस्थाएँ करनी पड़ेगी। लेकिन मैं चलने का संकल्प ही नहीं करूँ, यह बात ठीक नहीं है। अंग्रेजी में सुन्दर कहावत है, 'Not failure but low aim is crime'। कोई मनुष्य अपने जीवन में सफल होता है या असफल होता है? लक्ष्य तक पहुँचता है या नहीं पहुँचता है? इसमें कोई गलती भी नहीं है। किन्तु गलती यह है कि मानव जीवन की महत्ता को उसने समझा नहीं, जिसने अपने जीवन में कोई उदात्त संकल्प ही किया ही नहीं। भले ही उस संकल्प को साकार करने में वह सफल हो या न हो लेकिन संकल्प जागृत करना महत्त्वपूर्ण है।

इसलिए हम लोगों के अन्तःकरण में कार्यारम्भ का संकल्प जागृत होना चाहिए कि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम इन समस्त सिद्धान्तों को समझे, इनका चिन्तन करें, इस प्रकार का संस्कार कार्य हमारे स्थानों पर जाकर हम आरम्भ करें। इस प्रकार का कार्य आरम्भ करना एक साधना है। सामान्यतया साधना शब्द ईश्वरप्राप्ति के लिये प्रयुक्त होता है। मुझे जीवन में परमात्मा की प्राप्ति हो जाये, परमात्मा की कृपा मुझें प्राप्त हो, इसके लिए हम लोग साधना करते हैं। बड़ा साधन हम न भी जाने तो भी कम से कम नित्य की पूजा करना, नित्य का जप आदि करना, इन बातों को हम लोग जानते हैं। यह भी 'साधना' है। इस प्रकार की जो साधना हम लोग अपने घर में किया करते हैं, उसी प्रकार संस्कार कार्य भी एक साधना है। इस साधना के लिए जब मैं आगे बढ़ता हूँ, तो उससे अपने आप मेरा जीवन भी परिष्कृत हो जाएगा।

जो बहनें यहाँ पिछले वर्ष आई होंगी, और पिछले वर्ष यहाँ से जाने के पश्चात् जिन्होंने इस प्रकार का कार्य करना आरम्भ किया होगा, उनके अनुभव आपने यदि सुने होंगे, या उनसे आप मिली होगीं, तो एक बात आप उनसे अवश्य जानेगीं कि इस प्रकार का कार्य आरम्भ करने के पश्चात् बालक कितना सीखते हैं? यह दूसरी बात हैं, लेकिन हम लोग बहुत कुछ सीख जाते हैं। हमारी स्वयं की शिक्षा बहुत हो जाती है क्योंकि जब मुझे किसी को कुछ कहना है, मुझे किसी में कुछ परिवर्तन करना है, मुझे किसी को कुछ समझाना है, तो पहले वह बात मेरे अन्तःकरण में स्पष्ट होनी पड़ती है। इस प्रकार की स्पष्ट बात मेरे अन्तःकरण में आ जाये और वह बात उत्तम हो और वह बार-बार मेरे मुख से, निकलती रहे, तो निश्चित रूप से उस बात के कुछ विन्दु मेरे जीवन में अपने आप उतरते हैं। मैं जब बालकों से यह कहती हूँ, प्रातः जल्दी उठना चाहिए, देर तक सोते रहना अच्छा नहीं है, मैं यह कहती रहूँ तो कभी न कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि मैं कह तो रही हूँ लेकिन मैं क्या कर रही हूँ? अपने जीवन में स्वयं एक नया प्रकाश आ जाता है।

एक वक्ता थे जो प्रवचन किया करते थे। अनेक बातें कहते थे। जब कि कई बातें उनके जीवन में थी ही नहीं। तो एक श्रोता ने उनसे कहा "महाराज, आप खाली बोलते रहते हैं, करते तो कुछ भी नहीं।" तो वक्ता ने कहा, "वाह भाई! बोलने का काम भी मैं ही करूँ और करने का काम भी मैं ही करूँ! कम से कम बोलने का काम मैं कर रहा हूँ, करने का काम तुम करो।" विनोद के लिए, ऐसा वक्ता भले ही कुछ भी बोल दे किन्तु ऐसा जीवन में होता नहीं। जब एक बात मेरी जिह्वा पर बार-बार आती है तो वह जैसे बाहर जाती है, वैसे अन्दर भी उतरती हैं। इसलिए मेरी अर्धचेतना में उतरने के कारण, मेरे अर्धसुप्त मन में उतरने के कारण, यदि मैं न भी चाहूँ, तो मेरा जीवन उस ओर ढ़लना आरम्भ हो जाता है। इसलिए मैंने पहले ही दिन एक बात आपसे कही थी कि हम जब यहाँ पर किसी प्रकार की शिक्षा देते हैं, कुछ बातें बतलाते हैं, तो ऐसा नहीं कि हम आपको सिखा रहें हैं, बल्कि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आपको सिखाते-सिखाते हम भी सीख रहें है, और यह निरन्तर चलता रहता है।

हम लोगों को अपने अपने स्थानों पर जाकर कार्य करना है। कोई भी संस्कार कार्य करनेवाली बहन अथवा भाई, वे परिपूर्ण परब्रह्म के साक्षात्कार सम्पन्न महात्मा होते हैं, ऐसा कभी होता नहीं और उसकी आवश्यकता भी नहीं। किन्तु जिन सुन्दर बातों को वे निष्ठा से देखते है, अपने जीवन में लाना चाहते हैं, वैसा बोलते रहते हैं, उन बातों के प्रभाव से वे अपने आप धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाते हैं। यदि हम ऐसा कार्य करतें हैं तो इसमें समाज का भला तो होता ही है, बालकों का भविष्य निर्माण होता है, उनका कल्याण भी होता है, साथ ही अपना भी स्वयं का बहुत बड़ा कल्याण उसमें छिपा हुआ है। अनेक बार आपको ऐसा भी लगेगा कि हमने इतना प्रयास तो किया, लेकिन कोई परिवर्तन खास दृष्टिगत नही हुआ! आरम्भ में मुझे कार्यकर्ता जब ऐसा पूछते थे, कि कोई अधिक परिवर्तन दिखता नहीं है, मैं कहता था - "ठीक है! लोगों में परिवर्तन नही दिखता है, आपको स्वयं में दिखता है कि नही? इसी को पहले देख लो।"

हम लोगों को यहाँ से जाने के पश्चात् एक-एक इत्र की दुकान खोलनी है। इत्र की दुकान खोलनेवाले का आनन्द यह होता है कि उसकी दुकान पर ग्राहक चाहे आयें या न आयें, उसका माल बिके या न बिके लेकिन जितनी देर वह दुकान में हैं उसको तो सुगन्ध की प्राप्ति होती ही रहती है। इसी प्रकार संस्कार कार्य आरम्भ करते ही लोगों के जीवन में सुगन्ध चाहे आए या न आए, हमारा जीवन सुगन्धमय होगा, इसमें कोई आशंका नहीं।

हमारे जीवन का दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए? इसको आप अब्राहम लिंकन के एक प्रसंग से समझ सकेंगे। अब्राहम लिंकन संसद की एक बैठक के लिए जा रहे थे। संसद की बैठक के लिए घोड़े की बग्गी में बैठकर जाते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन ने यह देखा कि एक सुअर गटर में अटका हुआ है। यदि उसको भीतर से बाहर खींचकर निकाला नहीं गया तो कुछ समय में वह डूबकर दम तोड़ देगा। लिंकन बग्गी से उतरे और दौड़े। लिंकन ने तुरन्त जाकर उस सुअर को बाहर निकाला। सुअर बाहर निकलते ही भाग गया। थोड़ा किचड़ उड़ा और कीचड़ के वे धब्बे लिंकन के कपड़ों पर आ गये। समय पर संसद में पहुँचना आवश्यक था। अतः लिंकन कपडे बदले बिना ही संसद पहुँचे। संसद में लोग एक दूसरे की ओर देखते रह गये, कि आज इनके वस्त्र इस प्रकार से कीचड़ में भरे हुए कैसे है? लेकिन जब लोगों को इस बात का पता चला कि अमेरिका का यह राष्ट्रपति मार्ग में आते समय डूबते हुए एक सुअर को कीचड़ से बाहर निकालने के लिए बग्गी से उतर पड़ा, और उस काम को पूरा करने के पश्चात संसद में जाना ठीक समझा, लोगों के मस्तक झुक गये। वह सुअर है, लेकिन मैं इस देश का राष्ट्रपति हूँ। जब मैं राष्ट्र का पति हूँ तो इस सुअर के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रति भी कोई न कोई दायित्त्व मेरे ऊपर है। उसका प्राण बचाना इस समय मेरा कर्तव्य है ऐसा वे मानते थे।

हम लोग तो अब्राहम लिंकन जितने व्यस्त नहीं है। हम लोग व्यस्त तो है, क्योंकि इतनी देर टी.व्ही. देखना पड़ता है, बहुत सारी बातें करनी पड़ती हैं, और गप-शप! कोई खाली थोड़े ही हैं। लेकिन फिर उस अत्यन्त व्यस्त दिनचर्या से थोड़ा सा समय निकाल कर इस काम को कर लेंगे, तो उस काम का सौरभ, उस काम की सुगन्धी हमें भी धन्य करेगी और समाज को भी हमारे लिए कृत-कृत्य करके छोड़ेगी।

मुझे सेवा का प्रसंग याद आते-आते गांधीजी की एक बात याद आयी। सेवा ग्राम की बात है। प्ररचुरे शास्त्री कुष्ठरोगी थे। गांधीजी स्वयं उनकी सेवा में थे। उधर कांग्रेस समिति की बैठक थी। लेकिन गांधीजी के आने की प्रतीक्षा थी। जवाहरलाल नेहरू झल्लाए कि यह क्या है? बापू वैसे समय का बहुत ध्यान रखते थे, लेकिन समय से अधिक सेवा को मानते थे। इसलिए जवाहरलालजी दौड़ते हुए गए तो बापूजी जल्दी-जल्दी कुष्ठरोगी परचुरे शास्त्री की मरहम पट्टी कर रहे थे। जवाहरलालजी ने कहा, बापू! कांग्रेस समिति की बैठक में विलम्ब हो रहा है और आप यह क्या कर रहें हैं? बापू ने कहा, मुझे इतना सेवा का काम करने दो, मैं आया! आप तब तक बैठक आरम्भ कीजिएगा। जवाहरलाल नेहरू एक दम बोल पड़े, "कांग्रेस की बैठक ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि आपका एक कुष्ठरोगी की सेवा करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है?" शान्त स्वर में बापू ने कहा "कांग्रेस की बैठक से एक कुष्ठरोगी की सेवा करना मेरे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।" गांधीजी के जीवन की यह निष्ठा है। मैं जब किसी की सेवा करने का व्रत लेकर बैठा हूँ, तो काम छोटा है या बड़ा है, इस काम का विचार नहीं करना है। मैं उस काम में जुट जाऊँ। निश्चित रूप से दूसरा काम भी महत्त्वपूर्ण होगा, लेकिन वहाँ पर उस काम को दूसरे भी करने के लिए लोग हैं। कुष्ठरोगी के समीप जाकर उसकी सेवा करने के लिए उस आश्रम में कोई तैयार नहीं था, बापू वह सेवा कर रहे थे। इसलिए बापू ने कहा कि जब यह काम अन्य कोई नहीं कर रहा है, तो मेरे लिए यही काम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मैं इनकी सेवा पूरी करके वहाँ आ रहा हूँ। मैं आनेसे इन्कार नहीं कर रहा हूँ। लेकिन मैं इस सेवा को छोड़ नहीं सकता और कांग्रेस की बैठक से मैं इस सेवा को कम महत्त्व देना नहीं चाहता। कल्पना कीजिएगा, इन महापुरुषों के जीवन कितने भी व्यस्त रहें, और इतनी व्यस्तता में भी इन महापुरुषों ने सेवा के लिए कैसे समय निकाला।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के पिता श्री. आशुतोष मुखर्जी की एक बात मुझे याद आ गयी। डॉ. आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति थे। वे एक दिन विश्वविद्यालय में बैठक के लिए जा रहे थे। और बैठक के लिए जाते-जाते मार्ग में एक विधवा महिला रोती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुई और अत्यन्त हड़बड़ी में दिखी। उसकी बेचैनी को देखते हुए आशुतोष बाबू बग्गी से उतरे और पूछा 'क्या बात है बहन?' उस बहन ने कहा, आज मेरे पति का श्राद्ध है। मैं श्राद्ध के लिए पुरोहित ढूँढ़ रही हूँ। मुझे कोई पुरोहित नहीं मिल रहा है, और ब्राह्मण के बिना श्राद्ध हो नहीं सकता है। अब श्राद्ध नहीं हुआ तो फिर कैसे होगा? कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. आशुतोष मुखर्जी ने कहा, "मैं भी ब्राह्मण हूँ, और मैं श्राद्ध करना जानता हूँ, चलो मैं तुम्हारे घर पर आता हूँ। मैं तुम्हारे पति का श्राद्ध करता हूँ, उसके बाद मैं जाऊँगा।" आशुतोष बाबू गये, उन्होंने श्राद्ध करवाया, जल्दी में करवाया। वहाँ से लौटकर फिर वे बैठक में पहुँचे। लोगों से कहा, बैठक तो घण्टा भर बाद में भी हो सकती थी लेकिन उसके पति का श्राद्ध आज नहीं होता तो बाद में नहीं किया जा सकता था। मध्याह्न का श्राद्ध सायंकाल में भी किया जा सकता। और ब्राह्मण का कर्तव्य है कि यदि कोई इस प्रकार की आपत्ति में फँस जाये तो सभी नियमों को छोड़कर वह ब्राह्मण पहले श्राद्ध में उपस्थित हो जाये क्योंकि दूसरे का श्राद्ध उस व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

डॉ. आशुतोष मुखर्जी, अब्राहम लिंकन अथवा महात्मा गांधीजी ये सभी संसार के अत्यन्त बड़े महापुरुष है और इन बड़े महापुरुषों ने अपने जीवन में सेवा के कार्यों को इतना महत्त्व दिया। हम व्यस्त होने पर भी उतने व्यस्त नहीं हैं। हमारे पास कुछ समय अवश्य है। और मैं तो यह कहना चाहूँगा कि यदि हमने ऐसे सुन्दर कार्य में अपना योगदान देना आरम्भ किया तो इससे बढ़िया अपने समय का सदुपयोग कोई हो नहीं सकता है। इतना सुन्दर काम, भगवान् की पूजा का काम, साक्षात् विश्वव्याप्त प्रभु सेवा का यह काम है। हमारा देश, हमारा समाज और हमारा परिवार, इसका सच्चा आधार क्या हैं? इसका सच्चा धन कौनसा है? इसका सच्चा धन हमारे घर के बालक हैं। और हमारे घर के बालकों के संस्कार यदि अच्छे होंगे तो परिवार का, समाज का, और राष्ट्र का भी भविष्य उज्ज्वल है। यदि हमने बहुत कुछ कमाया पर बालकों को संस्कार नहीं दे पाये, तो बुढ़ापे में अपने पास सम्पत्ति होकर भी केवल रोना पड़ेगा। हो सकता है यही सम्पत्ति उन बालकों के पतन और हमारे क्लेश का कारण हो जाय। इसलिए सम्पत्ति कमाओं, सम्पत्ति कमाने में कोई वैमत्य नहीं हो सकता। किंतु इतने अन्धे होकर उस पैसे के पीछे मत दौड़ो कि कल पैसा ही हमारा शत्रु हो जाये। हो सकता है, हमारे पुत्र यदि सज्जन नहीं निकले, हमारे पुत्रों के मित्र यदि सज्जन नहीं होंगे और वे हमारे पुत्रों को बिगाड़ना आरम्भ कर देंगे, तो ध्यान रखना, हमारे द्वारा कमाई हुई सम्पत्ति हमारी शत्रु बनकर हमारा गला घोट सकती है।

छोटे बालकों को ही योग्य दिशा में ढाला जा सकता है। कोरे पत्र पर ही कुछ लिखा जा सकता है। एक कोरा पत्र ज्ञानेश्वर महाराज के पास आया तो मुक्ताबाई की प्रेरणा से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानेश्वर महाराज ने संसार को 'चांगदेव पासष्टी' जैसा सुन्दर दिव्य ग्रन्थ दे दिया। इस एक छोटे से ग्रन्थ में ज्ञान-विज्ञान का सार हम लोगों को उपलब्ध हो जाता है। कोरा काग़ज़ होना तो बड़ी अच्छी बात है, लेकिन कुसंस्कारों के कारण जिनका जीवन अन्धकारमय हो जाता है, उनका जीवन कोरा काग़ज़ नहीं अपितु काला काग़ज़ बन जाता है। और यह अन्धकार हमारे जीवन में न आयें, ऐसा लगता हो तो कार्य की दिशा यही हैं। यही कार्य आवश्यक है। यदि इससे अच्छा कोई काम आपमें से कोई भी सुझा सकता हो, मैं आपको हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और वचन देता हूँ कि उस काम को मैं स्वीकार करूँगा क्योंकि मैंने कोई यह ठेका नहीं लिया है कि मैं यही काम करूँगा। मैंने अपनी बुद्धि से जितना जाना, वहाँ तक मैंने इस काम को सबसे अच्छा समझा। इसलिए मैं इस काम का आग्रही बना और उस काम के साथ जुड़ा। यदि इससे अच्छा, इस दिशा का कोई काम मुझे दिखाए, तो मैं इस काम को छोड़ दूँगा, और उस काम में जुट जाऊँगा। लेकिन मुझे विश्वास है, और अनुभव भी है। उसके आधार से मैं एक बात आपको बतला सकता हूँ। यदि आप स्वयं इस प्रकार की प्रेरणा बालकों को देकर उनको सुन्दर कार्यकर्ता बना देती हैं तो इससे बढ़िया, इससे अच्छा और कोई काम पूरे संसार की सेवा के लिए, कुछ भी नहीं हो सकता।

जिजामाता ने कोई सामाजिक सेवा नहीं की, जिजामाता किसी क्लब में नहीं गयी, किसी क्लब में जाती तो पता नहीं शिवाजी महाराज हमें मिलते या नहीं। किन्तु जिजामाता ने एक काम किया। शिवाजी का हाथ पकड़कर, जिजामाता मन्दिरों में दर्शन के लिए जाती थी। जिजामाता मन्दिर में जाकर महाभारत की कथाएँ उसे सुनाती। छोटा शिवाजी महाभारत की कथा सुनता, रामायण की कथा सुनता। कहीं पर भी वे विद्यालय में नहीं गये, लेकिन इन कथाओं ने उनके अन्तःकरण में संस्कार सम्पन्न किया और ऐसे संस्कार उनमें भर दिये, ऐसा लक्ष्य उनके सामने खड़ा कर दिया कि मैं अर्जुन के समान बनूँगा। मैं श्रीराम के समान बनूँगा, मैं हनुमानजी के समान पराक्रम करूँगा। और इसका परिणाम कितनी शीघ्रता से होता है, आप देखेंगे। चौदह वर्ष का शिवाजी अपने पिताजी के साथ विजापुर जाता है और मार्ग से जाते हुए शिवाजी देखता है कि एक कसाई, एक गाय को लेकर काटनें के लिए ले जा रहा है। शिवाजी महाराज ने जाकर कहा, नहीं! गाय को नहीं काटना चाहिए। लेकिन कसाई कसाई था। उस कसाई ने कहा, ऐसी बात है तो तुम्हारे सामने काटता हूँ। ऐसा कहकर जैसे ही उसने अपना हथियार गाय को काटने के लिए उठाया चौदह वर्ष के छोटे से शिवाजी ने अपनी तलवार से उसका हाथ काट दिया। जिजामाता ने शिवाजी के अन्तःकरण में क्या-क्या प्रेरणाएँ भरी होंगी? इसका चिन्तन कीजिएगा। एक प्रसंग शिवाजी महाराज के बाल्य जीवन में बड़ा विलक्षण है। अपने पिता शहाजीराजा के साथ वे विजापूर दरबार में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गये। शहाजीराजा ने तो बादशाह को कुर्निसात किया, क्योंकि वे राजसेवक थे। परन्तु छोटे शिवाजी वैसे के वैसे खड़े रहे। दरबार को देखते रहें। "बादशाह को कुर्निसात करों" पिता ने कहा। शिवाजी ने नहीं किया। आखिर बादशाह ने कहा - "छोटा बच्चा है, कोई बात नहीं, नासमझ है।" लेकिन शिवाजी नासमझ नहीं था, बहुत समझदार था। बादशाह ने अपना मान बचाने के लिए कह दिया, नासमझ है; चलो छुट्टी करो। लेकिन शहाजी राजे को बड़ा बुरा लगा। घर लौटने के पश्चात् शाहजी राजे ने अपनी पत्नी से कहा, जिजाबाई! इस शिवाजी को तुमने क्या संस्कार दिये? इसको प्रणाम करना भी नहीं आता। आज दरबार में मेरी कितना अपमान हुआ। अच्छा हुआ कि बादशाह आक्रुद्ध नहीं हुए, नहीं तो क्या होता? एकान्त में जिजामाता ने शिवाजी से पूछा, "शिवाजी तुम्हें प्रणाम करना नहीं आता?" शिवाजी ने कहा, "माँ मैं प्रणाम करना जानता हूँ। लेकिन माँ, मैं प्रणाम किसको करना चाहिए यह भी जानता हूँ। मैंने महाभारत से और रामकथा से इसी बात को सुना है कि जो गाय को काटता है उसको प्रणाम नहीं करना चाहिए। जो मंदिरों को तोड़ता है उसको प्रणाम नहीं करना चाहिए।"

देशाचा राजा नाही, देशनिष्ठ राहू कैसा।
धर्माचा राजा नाही, धर्मनिष्ठ राहू कैसा।

माँ आप कहेगी तो आपके सामने और पिताजी के सामने मैं गर्दन काटकर रख सकता हूँ। लेकिन पापियों के सामने शिवाजी कभी झुक नहीं सकता। जिजामाता ने शिवाजी को आलिंगन दिया।

यहाँ से लौटते समय हम लोग अपने सामने अन्य कोई चित्र नहीं रखें तो भी कोई बात नहीं, लेकिन जिजामाता का चित्र अपने अंतःकरण में लेकर जायें। हमारे यहाँ पर माताओं को आशीर्वाद दिया जाता था - 'वीरमाता भव।' वीरों की माता हो, तुम्हारा पुत्र वीर होना चाहिए। तुम्हारे पुत्रों के द्वारा कोई न कोई महान् कार्य जीवन में किया जाना चाहिए।

कठोपनिषद् में वर्णन आता है। अरे! संसार में कितने लोग जन्म लेते हैं और कितने मरते हैं। कितनी घास उगी और कितनी घास गई, किसी ने हिसाब रखा? कोई हिसाब नहीं रखता है। लेकिन उन अत्यन्त महान पुरुषों का नाम इतिहास में अमर हो जाता है जिन्होंने कुछ अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य अपने जीवन में किया। यदि मैं अपने जीवन में कुछ करना चाहती हूँ तो मुझे अपने जीवन में इसी प्रकार के पुत्र को जन्म देना चाहिए। आपने जिन बालकों को अपनी कोख से जन्म दिया है, उन्हींकी माता अपने को नहीं मानों। समाज में अनेक बालक हैं। ऐसा मानों मैं उन सभी की माता हूँ। मैं उन बालकों में से दो बालकों को चुनूँगी और अपने जीवन में उन दो बालकों को पुरुषार्थ सम्पन्न बना दूँगी। इतना तो लक्ष्य लेकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हम यहाँ से जायें नहीं तो कुछ बालकों को संस्कार सम्पन्न करने का प्रयास आरम्भ कर दें।

यहाँ से हम एक दीपक लेकर जायें और वह दीपक सामान्य दीपक नहीं, वह दीपक संस्कारों का दीपक हो। यहाँ का प्रकाश लेकर हम अन्धकार में ही जायें, ऐसा नहीं। इस प्रकाश को हम अपने घरो में भी ले जाए। एक बात मैं सदा कहता आया हूँ - हम मन्दिरों में जाते हैं, बहुत अच्छी बात हैं। मन्दिरों में जाना ही चाहिए। लेकिन उससे भी बढ़िया यह बात है कि ऐसे वातावरण को अपने घर में लाकर अपने घर को ही मंदिर बना दें।

उसी प्रकार हम संस्कार कार्य के मुख्य केन्द्र में जाते हैं, तो अच्छी बात है, लेकिन उससे भी बढ़िया बात यह होगी कि हम यहाँ से संस्कार की प्रेरणा लेकर जायें और इसी प्रकार संगमनेर का प्रतिबिम्ब भारत के अन्य स्थानों पर निर्माण कर दें। मुझे तो ऐसा लगता है कि संगमनेर में ही हम इस प्रकार का काम करते हैं, यह कोई बढ़िया बात नहीं। बार-बार, इस बात को हम यहीं पर करते रहें ऐसा नहीं। वास्तव में, हम लोगों को ऐसे भी अन्य स्थानों का निर्माण करना है। हम उसमें अपनी सफलता मानते हैं। हम उसको किसी प्रकार नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखते हैं। इसी प्रकार का कार्य सर्वत्र आरम्भ होना चाहिए। यही वास्तव में समाज की सेवा का सर्वोत्तम उपक्रम है। यह काम आप कर सकती हैं। हम लोगों के पास समझ है। विदेश में घुमते हुए मैंने एक बात देखी, वहाँ महिलाओं को कितना काम करना पड़ता है। लगता है कि अमेरिका में क्या है? बहुत काम है। दिन भर व्यस्त रहना पड़ता है।

दिनभर पति-पत्नी दोनों को काम किए बिना छुट्टी ही नहीं है। वहाँ पर घर में काम करनेवाला कोई आदमी मिलता ही नहीं है। कोई भी नहीं। इसलिए बाहर कमाने का भी काम पत्नी को करना पड़ता है, घर का भी काम पत्नी को करना पड़ता है और पति को भी उसमें सहभागी होना पड़ता है। जितना व्यस्त, जितना रात-दिन काम में मग्न वहाँ रहना पड़ता है, उसे देखकर मैंने भी कह दिया कि भाई। मेरा भारत महान! कल्पना कीजिएगा, इन अनुपातों में हम लोगों के पास कितना समय है? आपके जो भी दिन भर के कार्यक्रम होंगे, जो भी महिने के कार्यक्रम होंगे, मैं उनमें थोडी भी कटौती करना नहीं चाहता। लेकिन फिर भी, आपके पास अतिरिक्त कुछ समय अवश्य होगा। उस अतिरिक्त समय का क्या उपयोग आप करती हैं? मनुष्य की सभ्यता का पता किस बात से चलता है, दैनिक जीवन जीते हुए, दैनंदिन काम तो सभी को करने पड़ते हैं, लेकिन अपने पास उपलब्ध अतिरिक्त समय में वह क्या करता है? उससे उसके अन्तःकरण की सभ्यता का पता चलता है। उससे उसकी अन्तःकरण की संस्कृति का पता चलता है। मुझे समय मिला, मैं टी.व्ही. देखने बैठ जाँऊ और कुछ भी कार्यक्रम नहीं हो तो मिकी-माऊस ही देखता बैठूँ, यह भी एक रास्ता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है। अथवा मैं सोता रहूँ, अथवा मैं अच्छी पुस्तक पढ़ूँ, अथवा मैं कुछ अच्छा काम करूँ। हम अपने उस बचे हुए एक घण्टे के समय को किसमें लगाते हैं? इससे हमारी श्रेष्ठता का पता चलता है। आपके पास इस प्रकार का जो भी समय होगा, वह इस कार्य में लगाइएँ।

मुझे वस्तुतः आपसे यह कहना है कि आप समय निकाल कर इस काम को कीजिएगा, क्योंकि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। लेकिन उतना न भी कर पाएँ, तो भी आपके पास जो समय बचता है उस समय को आप इस कार्य में अवश्यमेव दीजिएगा। इसका एक बड़ा लाभ आप लोगों की दृष्टि से भी है। हमारे यहाँ पर आजकल सभी पढ़ी लिखी बहूएँ आती हैं। अच्छी बात है कि वे पढ़ी-लिखी हैं, और उनको कमाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता है। इसका परिणाम क्या होता है, पता है? अब इसको कहीं काम तो करना है नहीं और इसके पास समय भी है और यह पढ़ी लिखी भी है। तो इसने जो ज्ञान अपने महाविद्यालय में प्राप्त किया उस ज्ञान का क्या होता है? वह ज्ञान पड़ा रहता है, सड़ता जाता है, मलिन होता है, और भुला जाता है। यदि आप, बालकों को शिक्षा देने का, बालकों को संस्कार देने का काम आरम्भ कर देंगी तो आपका वह ज्ञान फिर से जागृत हो जाएगा। आप भी सर्वदा एक अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी के रूप में लोगों के सामने रहेंगी। आपके जीवन में भी इस कार्य के कारण धन्यता आएगी। हमारे शास्त्रकारों ने एक सुन्दर बात बताई -

"यः क्रियावान् स पण्डितः।"

पण्डित कौन? जो केवल अनेक ग्रन्थों को पढ़ लेता है वह पण्डित नहीं, लेकिन जो क्रियावान् है, जिसने अपने ज्ञान का अनुवाद क्रिया में किया, कर्म में किया, वह वास्तव में पण्डित है। हमने जो कुछ जाना, उसे अपनी क्रिया में लाए।

यहाँ पर इन तीन दिनों में आप सभी को यहाँ आमन्त्रित करके, जो कुछ बातें कही गई, जो कुछ सिखाया गया, जो कुछ दिखाया गया उसके पीछे हेतु था। यह केवल यूंही भराया हुआ सम्मेलन नहीं था। यह आपके गप-शप के लिए दिया गया अवसर भी नहीं था। पहले दिन आपको गम्भीरता के साथ, ये सब बातें कही गई, और मुझे बड़ा आनन्द है कि आप लोगों ने इन तीन दिनों में बिना किसी प्रकार का विश्राम किए बहुत कुछ देखा है, सीखा है, पूछा है, कहा है, जानने का प्रयास किया है। इन सिखी हुई बातों को आप तुरन्त कार्यान्वित नहीं करेगी तो धीरे-धीरे इसका विस्मरण होने लगेगा। अतः जाते ही समविचारी कार्यकर्ताओं को अपने साथ में लें, एक छोटी सी योजना बनावें और बहुत बड़ा नहीं, किंतु छोटासा ही क्यों न हो, कार्य आरम्भ करें।

जिन-जिन लोगों ने इस प्रकार का काम आरम्भ किया उन लोगों के अनुभव इस प्रकार के हैं कि इस काम में बहुत आनन्द है। इस काम का समाधान बहुत अधिक है। हम लोग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार के काम का आरम्भ करने का व्रत लेकर यहाँ से जाए, इसीमें हमारे इस शिविर की सार्थकता है। साधना और परमात्मा की भक्ति की यह सर्वोत्तम विधि है। आप सभी को परमात्मा इस प्रकार की प्रेरणा दें, आपको बल दें और आपके द्वारा इस प्रकार का काम करा कर, आपके जीवन को सुन्दर बना दें, सफल बना दें, और उपयोगी बना दें। कोई कितना भी अच्छा हो कोई कितना भी सुन्दर हो कोई कितना भी सम्पन्न हो, यदि वह उपयोगी नहीं है, तो यह सब कुछ वेकार है।

"बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।
पन्थी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।"

हमें अपने जीवन में केवल वड़ा ही नहीं वनना है। खजूर का पेड़ बहुत ऊँचा होता है, लेकिन उसके नीचे विश्राम के लिए आनेवाले को न तो ठीक छाया मिलती है, न वह सरलता से फल देकर उसकी भूख मिटा सकता है। इस प्रकार का बड़प्पन भी एक वोझ है और वह समाज के लिए केवल अभिशाप है। हमारा वड़प्पन ऐसा बड़प्पन न हो। हमारा वड़प्पन ऐसा हो कि मैं दूसरों को भी वड़ा वनाऊँ, मैं दूसरों को भी अपने पास लूँ। और परमात्मा ने जो अवसर मुझे दिया है, थोड़ा सा अतिरिक्त समय, थोड़ा सा अतिरिक्त धन, थोड़ी सी अतिरिक्त कार्यशक्ति जो मुझ में है, उसको परमात्मा की सेवा में अर्पण करके उसको मैं सफल वनाऊँ, यही जीवन की धन्यता है। धन्यता के इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा और शक्ति परमात्मा आपको दें, ऐसी प्रार्थना परमात्मा के श्रीचरणों में करता हूँ। आप सभी ने मेरी वातें वड़ी शान्ति के साथ सुनी। मुझे विश्वास है कि आप उसको अवश्यमेव क्रियान्वित करेंगी। इस विश्वास के साथ मैं आप सवको प्रणाम करता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

वसुदेवसुतं देवं, कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम्।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

○○○

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिता के संस्कारहीन होनेपर भी
प्रह्लाद जैसे उत्तम संस्कार सम्पन्न बालकों का
जन्म हम देखते हैं।
लेकिन माता संस्कारहीन हो और
पुत्र में संस्कार आ जायें
ऐसा उदाहरण इतिहास में नहीं।
हमारी संस्कृति में
'माता' यह शब्द अत्यंत गौरवपुर्ण है।
माता को ही पहला गुरू माना गया है।
आज हमारा कर्तव्य यह है की
हम केवल अपने बालक की माता न रहकर
अपने आस-पास के
बालकों की भी माता बनें।
समाज के बालकों को
संस्कार प्रदान करने का कार्य करें।

-आचार्य किशोरजी व्यास

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh